# उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

## मानविकी विद्याशाखा

## उत्तराखंड का लोक साहित्य (भाग दो )

## चतुर्थ सेमेस्टर 611

**विशेषज्ञ समिति**

| | |
|---|---|
| प्रो. एच.पी. शुक्ला<br>निदेशक, मानविकी विद्याशाखा,<br>उत्तराखण्ड मुक्तविश्वविद्यालय,<br>हल्द्वानी, नैनीताल | प्रो. सत्यकाम<br>हिन्दी विभाग<br>इग्नू, नई दिल्ली |
| प्रो.आर.सी.शर्मा<br>हिन्दी विभाग<br>अलीगढ़ विश्वविद्यालय,अलीगढ़ | |
| डा. राजेन्द्र कैड़ा<br>असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,<br>हल्द्वानी, नैनीताल | डा. शशांक शुक्ला<br>असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,<br>हल्द्वानी, नैनीताल |

**पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन**

| | |
|---|---|
| डा. राजेन्द्र कैड़ा<br>असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,<br>हल्द्वानी, नैनीताल | डा. शशांक शुक्ला<br>असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,<br>उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,<br>हल्द्वानी, नैनीताल |

| इकाई लेखक | इकाई संख्या |
|---|---|
| डॉ. नागेन्द्र ध्यानी<br>उप-निदेशक,<br>उत्तराखण्ड भाषा संस्थान, देहरादून,<br>उत्तराखण्ड | 9, 10, 11, 12, 13, 14 |

**कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय**

संस्करण: 2022
प्रकाशकः उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139
मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

ISBN - 978-93-84632-75-5

विषय सूची

# चतुर्थ सेमेस्टर 611


| खण्ड 3 गढ़वाली लोक साहित्य का परिचय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| इकाई 9 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप | 145-161 |
| इकाई 10 गढ़वाली लोक गीत : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य | 162-188 |
| इकाई 11 गढ़वाली लोक गाथाएँ : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य | 189-210 |
| इकाई 12 गढ़वाली लोक कथाएँ : इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य | 211-232 |
| इकाई 13 गढ़वाली लोक साहित्य : अन्य प्रवृत्तियाँ | 233-253 |
| इकाई 14 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं साहित्य | 254-271 |

# इकाई 9 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप
9.3.1 गढ़वाली और गढ़वाली लोक मानस
9.3.2गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक
9.3.3गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास
9.3.4गढ़वाली लोकसाहित्य का वर्गीकरण
9.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा
9.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य
9.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य
9.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य
9.5 सारांश
9.6 अभ्यास प्रश्न
9.7 पारिभाषिक शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

## 9.1 प्रस्तावना

लोक का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है उसके प्रभामंडल की परिसीमा में उसकी संस्कृति, कलाएं , विश्वास, भाषा और इतिहास-धर्म सब कुछ आ जाता है। इन्हें लोक से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। डा. गोविन्द चातक के अनुसार, 'लोक मानस की उद्भावना में इसके साथ ही सामूहिक जीवन-पद्धति का बड़ा हाथ होता है।' उसमें यथार्थ और कल्पना में भेद करने की प्रवृत्ति पर बल नहीं होता, इसलिए जड़-चेतन की समान अवधारणा पर उसका विश्वास बना रहता है। लोक साहित्य में यही लोक मानस बोलता है। मोहनलाल बाबुलकर 'गढ़वाली

लोक साहित्य की प्रस्तावना' पुस्तक की भूमिका में इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, "साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है और खेलती है। इन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। वे लोक साहित्य की प्राचीनता के विषय में उल्लेख करते हैं कि, 'ऋग्वेद में अनेक लोक कथाएं उपलब्ध हैं। शतपथ ब्राहमण और एतरेय ब्राहमण में ऐसी ही गाथाएं प्राप्त होती हैं। भारतीय नाट्य शास्त्र ने भी लोक प्रचलित नाटकों को अपना विवेच्य विषय बनाया है। गुणाढ्य की वृहत्कथा , सोम देव के 'कथासरित सागर' में लोक मानस ही वर्णित है। मध्य युगीन निजंधरी कथाओं में भी मूलरूप से लोक कथाएं ही हैं'। लोकगीतों, लोकनाट्यों, लोककथाओं,लोक गाथाओं यहाँ तक कि लोक भाषाओं में भी लोक,रसा-बसा रहता है। लोक का प्रदेय ही लोक साहित्य है। यही करण है कि लोक को और उसके साहित्य को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। निष्कर्षतः लोक का साहित्य ही लोक साहित्य है।

लोक को जानने - पहचानने के लिए साहित्य के इतिहास को जानना भी जरूरी है! क्योंकि लोक जैसे -जैसे आगे बढ़ता है, उसकी संस्कृति विकसित होती चली जाती है और उसका इतिहास भी संस्कृति का अनुगमन करता हुआ आगे बढ़ता रहता है। इस तरह से भाषा का संस्कृति का और लोक व्यवहार का रूप सदैव बदलता रहता है वे निरंतर परिष्कार पाते रहते हैं ।लोक के इन घटकों के साथ-साथ लोक साहित्य भी अनुपद चलता रहता है। और उसके साथ-साथ साहित्य का इतिहास भी सृजित होता रहता है। अतएव 'लोक' को जानने के लिए उसकी परंपराएं, रीतिरिवाज, जातीय विश्वास मिथक, आदि को जानना जरूरी होता है। बिना इन्हें जानें आप लोक को नहीं समझ पाएंगें ।लोक को समझनें में लोक साहित्य पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। अतः लोक साहित्य के स्वरूप को जानना भी हमारे लिए परम आवश्यक हो जाता है ।लोक साहित्य के स्वरूप के अन्तर्गत, लोक साहित्य की भाषा, उसकी प्रकृति, सभी गद्य-पद्य नाटक आदि विधाएं,उसकी सृजन प्रक्रिया भेद-उपभेद, और सौन्दर्य तत्वों का गम्भीर अध्ययन आवश्यक होता है। अतएव लोक साहित्य के स्वरूप के साथ-साथ उसके क्रमिक वृद्धिंगत इतिहास पर भी आपकी दृष्टि रहनी चाहिए।

## 9.2 उद्देश्य

'गढ़वाली लोक साहित्य' अन्य भारतीय प्रदेशों के लोक साहित्य की तरह रोचक और लोक मानस का प्रतिनिधित्व करता है। अतएवं 'गढ़वाली लोक मानस' के लोक साहित्य के क्रमिक इतिहास को समझना ही इस इकाई लेखन का मुख्य उद्देश्य है। इस का अध्ययन करने से आप गढ़वाली लोक मानस के स्वभाव उनकी प्रवृत्तियों, उनके लोक साहित्य में लोक विश्वासों, मिथकों तथा उनके लोक साहित्य की बनावट व बुनावट के बारे में जान सकेंगें तथा साथ ही आप गढ़वाली लोक साहित्य के उद्भव एवं विकास के क्रमबद्ध इतिहास को भी जान सकेंगे.

## 9.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

### 9.3.1 गढ़वाल और गढ़वाली लोक मानस

हरिकृष्ण रतूड़ी के अनुसार, "बावन गढ़ों के कारण इस प्रदेश का नाम गढ़वाल पड़ा है। लगभग 1500 ई. में राजा अजयपाल ने इन बावन गढ़ों को जीतकर सबकों अपने राज्य में मिला दिया। तब से इस पूरे पर्वतीय प्रदेश को जिसमें वे बावनगढ़ थे गढ़वाल कहा जाने लगा।, एच0जी बाल्टन ने अपनी पुस्तक 'ब्रिटिस गढ़वाल गजेटियर' में बहुत सारे गढ़ों वाला अंचल (गढ़वाल) प्रकारान्तर से कहा है। पातीराम ने अपनी किताब 'गढ़वाल एन्सेन्ट एंड मार्डन' में 'गढ़पाल से गढ़वाल' नाम पड़ा स्वीकार किया है। डा. हरिदत्त भट्ट शैलेश' ने अपनी पुस्तक गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य में लिखा है, 'मेरी मान्यता है कि गढ़वाल शब्द गडवाल से निकला है। 'गड् और वाड' ये दोनों शब्द वैदिक संस्कृत के हैं। और इनका गढ़वाली भाषा में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है'।

'गाड़' बड़ी नदी और 'गड़' छोटी नदियों जैसे -दुण्गड, लोधगड आदि। यहाँ अनेक गड़ छोटी नदियाँ हैं। इसलिए गड़वाल छोटी-छोटी असंख्य नदियों का प्रदेश गढ़वाल हुआ। वाल-वाला। वाल शब्द गढ़वाली में बहुत प्रयुक्त होता है। जैसे -सेमवाल, डंगवाल आदि।

कविवर भूषण ने भी अपनी एक कविता में इस भूभाग के लिए 'गडवाल' शब्द का प्रयोग निम्न पद्य में किया है-

"सुयस ते भलो मुख भूषण भनैगी वाटि

गडवाल राज्य पर राज जो बखानगो।''

यहां के मूल निवासी कौन थे, यह कहना कठिन है। प्रागैतिहासिक काल में यहां कक्ष-किन्नर, गन्धर्व, नाग, किरात, कोल, तंगण,कुलिन्द, खस आदि जातियाँ निवास करती थी। इस के मध्य भाग में कोल, भील और राजस्थान, गुजरात,महाराष्ट्र और बंगाल से यहां बसी हुई जातियॉ निवास करती है। जिन्हें अब गढ़वाली कहते हैं। वर्तमान में उत्तर भारत के अनेक नगरों में रहने वाले लोग यहाँ बसने के लिए ललायित रहने लगे हैं। यह यहाँ की संस्कृति ,प्राकृतिक छटा और शान्त वातावरण का प्रभाव माना जा सकता है। गढ़वाली लोक मानस, भोला-भाला, आस्तिक,प्रकृति प्रेमी, शान्त और परम्परावादी है। वह लोक अनुश्रुतियों, रूढ़ियों,देवीदेवताओं की पूजन की विविध परम्पराओं और वीर योद्धाओं, प्रेमियों, धार्मिकों के चरित्र से प्रभावित रहता है। अनेक वाह्य समागतों के गढ़वाल में बस जाने पर अब गढ़वाली जनमानस उनकी संस्कृति को भी अपनाने लग गया है। विवाह के अवसरों पर 'पंजाबी भाँगडा' गुजराती 'गरबा'राजस्थानी नृत्यगान भी लाकप्रिय होते जा रहे हैं। बाहर से आए वाद्य वादक, बैंड की धुन में गढ़वाली गीतों को ऐसे गाते और बजाते हैं जैसे वे वर्षो से यहीं बसे हों। गढ़वाली

जनमानस ने अपनी परम्पराओं के साथ, देव पूजन आदि में और त्योहारों की रीति नीतियों में भी भारी परिवर्तन करके अपने मिलनशील स्वभाव और घुलनशील संस्कृति का परिचय दे दिया है। गढ़वाली लोक मानस की भाषा का नाम भी इस प्रदेश के नाम के अनुसार 'गढ़वाली' ही है। गढ़वाल की भाषा गढ़वाली। गढ़वाली में वैदिक संस्कृत, और शौरसेनी प्राकृत के शब्द अधिक संख्या में मिलते हैं । द्रविड़ भाषा के शब्द और उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी तथा राजस्थानी, गुजराती,महाराष्ट्री भाषाओं के अनेक शब्दों को गढ़वाली जनमानस ने अपनी भाषा में स्थान दिया है। अब वे इस भाषा में ऐसे घुल-मिल गए हैं कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व सरलता से पता नहीं लगता है। भाषा के साथ यहाँ का साहित्य भी बंगाली, राजस्थानी,और गुजराती साहित्य से आंशिक प्रभावित जान पड़ता है।

यहाँ की वीरगाथाएं, लोककथांएंऔर पवाड़ों का स्वर सरगम बहुत कुछ राजस्थानी से प्रभावित लगता है। वीरता, प्रेम, प्रतिज्ञा पालन, धर्म रक्षा, दैवीशक्तियों पर विश्वास, जादू-टोना, नृत्यगान में अभिरूचि आदि इसके प्रमाण हैं ।प्रकृतिप्रेमी गढ़वाली लोक मानस की गंगा जी और चारोंधामों (बद्रीनाथ, केदार नाथ, गंगोत्री और यमनोत्री) में अगाध श्रद्धा है। देश की सीमा पर आज भी यहाँ के वीर सैनिक तैनात हैं जो कि देशभक्ति, और कर्तव्यपरायणता के प्रतीक बनकर गढ़वाली लोक मानस की एक दिव्य छवि, देश और विश्व के आगे रखते हैं । तथापि शराबखोरी,अकर्मण्यता आदि दुर्गुणों से भी यहां का लोकमानस मुक्त नहीं माना जा सकता है.

### 9.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक

गढ़वाली का लोक साहित्य गद्यात्मक और पद्यात्मक दो रूपों में प्राप्त होता है। बहुत-सा अलिखित साहित्य श्रुति परम्परा से बाजगियों, व पंडितों द्वारा रटा-रटाया होने से सुरक्षित है। यहाँ के लोक ने वीरों की गाथाओं को परम्परा से गा-गाकर सुरक्षित रखा, नानी ओर दादियों ने लोक कथओं,बालगीतों (लोरियों) और ऐणा-मेणा (पहेली और लोकोक्तियों) को बच्चों को सुना-सुनाकर जीवित रखा है। साथ ही जागरियों, और पवाडा गायकों ने देव गाथाओं तथा श्रंगार वीरता से भरे, गीतों तथा वार्ताओं व कथासूत्रों को सुरक्षित रखकर अपने कर्तव्य का पालन किया है। गढ़वाली के लिखित साहित्य को खोजने का काम अंग्रेज विद्वानों तथा अधिकारियों ने सर्व प्रथम किया, मध्य पहाड़ी और गढ़वाली बोली लोक साहित्य के संकलन में एटकिन्सन के साथ उनके गढ़वाली विद्वानों का अवदान सराहनीय रहा है। जिनमें स्व. तारादत्त गैरोला' पादरी मिस्टर ओकले, भजन सिंह, सिंह, डा. गोविन्द चातक आदि का नाम अग्रगण्य कहा जा सकता है। डा. गोविन्द चातक ने जहॉ लोक गीत- और लोक कथाओं तथा लोक गाथाओं का संकलन किया, वहीं मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचन करके उसके स्वरूप तथा विकास को दर्शाया है। इन्होंने ही पहली बार लोक साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। चातक जी ने गढ़वाली लोक साहित्य को एक साथ अनेक पुस्तकों में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया है। डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने गढ़वाली के भाषा तत्व पर अनुसंधानपरक ग्रंथ लिखे (गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य) उनकी उल्लेखनीय पुस्तक है । सुप्रसिद्ध

लेखक भजन सिंह,सिंह, जनार्दन काला, अबोध बंधु। बहुगुणा, डा. महावीर प्रसार लखेड़ा, कन्हैयालाल डंडरियाल,डा. प्रयाग दत्त जोशी,डा. जगदम्बाप्रसाद कोटनाला ने गढ़वाली लोक साहित्य के लेखन एवं संवर्धन में उल्लेखनीय कार्य किया है।

### 9.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास

मोहनलाल बाबुलकर ने अपनी पुस्तक 'गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना' में गढ़वाली लोक भाषा के लिखित विकास के पाँच चरण माने हैं ।(1) आरम्भिक युग (2) गढ़वाली युग (3) सिंह युग (4)पांथरी युग (5)आधुनिक युग। वे लिखते हैं, कि गढ़वाली भाषा में लिखित परंपरा सन् 1800 से प्रारम्भ हुई प्रतीत होती है। इस संदर्भ में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। कई विद्वान गढ़वाली भाषा की लिखित परम्परा सन् 1850, तो कोई 1852, तथा कोई 1900 ई. को आधुनिक युग,अथवा आरम्भिक युग मानते हैं। प्रारम्भ की रचनाएं हरिकृष्ण दौर्गादत्ति, हर्षपुरी लीलानन्द कोटनाला की हैं। सन् 1892 में गढ़वाली भाषा में मिशिनरियों ने बाईबिल प्रकाशित की, और गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल की गढ़वाली हितोपदेश छापी । प्रारम्भिक युग की दो कवितायें , चेतावनी,और 'बुरो संग'(हर्षपुरी) जी की है। गढ़वाली युग गढ़वाली पत्र के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। 1905 में गढ़वाली के अंक में प्रकाशित 'उठा गढ़वालियों' सत्यशरण रतूड़ी की रचना थी, जिसने गढ़वाली मानस को झकझोर दिया था। चन्द्रमोहन रतूड़ी, आत्माराम गैरोला, तारादत्त गैरौला, गिरिजादत्त नैथानी,विश्वम्भर दत्त चन्दोला बल्देव प्रसाद शर्मा 'दीन' की रामी तारादत्त गैरोला की सदेई और योगेन्द्र पुरी की फुलकंडी, चक्रधर बहुगुणा की रचना, गैरोला का प्रेमीपथिक, भवानीदत्त थपिलियाल केजयविजय और प्रहलाद नाटक ने गढ़वाली के पद्य और नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि की। गढ़वाली छन्दमाला (लीलानन्द कोटनाला) तथा गढ़वाली पखाणा(शालीग्राम वैष्णव) की कालजयी कृतियाँ हैं। भजन सिंह'सिंह'अपने कृतित्व से एक युग प्रवर्तक कवि और लेखक के रूप में गढ़वाली लोक साहित्य में अवतरित हुए। उनका युग उनके नाम से ही ('सिंह युग') कहलाने लगा. इस कालखंड के लोक साहित्यकारों में भजनसिंह'सिंह' के अतिरिक्त कमल साहित्यलंकार , विशालमणि शर्मा, ललिताप्रसाद 'ललाम' सत्यशरण रतूड़ी उल्लेखनीय हैं। पांथरी युग के कर्णधार भगवती प्रसाद पांथरी थे। उनकी रचना बजवासुरी के बाद भगवतीचरण 'निर्मोही' की हिलांश पुरूषोत्तम डोभाल की वासन्ती तथा भगवतीप्रसाद पांथरी लिखित नाटक भूतों की खोह, पाँचफूल उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस युग के स्वनाम धन्य कवियों में अबोधबन्धुबहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद 'कंकाल', सुदामाप्रसाद प्रेमी, सच्चिदानन्द कांडपाल, उमाशंकर 'सतीश' डा. पुरूषोत्तम डोभाल , आदित्य राम दुदपुड़ी, महावीर प्रसाद गैरोला, जीतसिंह नेगी और डा. गोविन्द चातकउल्लेखनीय हैं। आधुनिक युग के गढ़वाली लोक साहित्यकारों में नरेन्द्र सिंह नेगी, मधुसूदन थपलियाल,कुटुज भारती, निरंजन सुयाल,लोकेश नवानी, रघुवीर सिंह रावत 'अयाल' , महेन्द्र ध्यानीऔर चन्द्र सिंह राही प्रमुख हैं

### 9.3.4 'गढ़वाली लोक' साहित्य का वर्गीकरण

(क) लोक गाथा - गढ़वाली लोक साहित्य को विशेषकर लोक गाथाओं को डा. गोविन्द चातक ने चार भागों में बाँटा है-

(1) धार्मिक गाथाएं (2) वीरगाथाएं (3) प्रणय गाथाएं (4) चैती गाथाएं। इनमें अधिकांश धार्मिक गाथाओं का आधर पौराणिक है। वीरगाथाओं में तीलूरौतेली, लोदी रिखोला, कालू भंडारी,रणूरौत, माधोसिंह भण्डारी की प्रमुख गाथाएं हैं। प्रणय गाथाओं में, तिल्लोगा (अमरदेव सजवाण) राजुला मालूशाही तथा धार्मिक गाथाओं में पाण्डव गाथा, कृष्ण गाथा,कुद्रू-विनता, और सृष्टिउत्पत्ति गाथा मुख्य है।

(ख) लोक कथा - कथा शब्द संस्कृत की 'कथ्' धातु से बना है। जिसका अर्थ है 'कहना'। कहना से ही कहानी बनी है। कथसे 'कथा'शब्द निष्पन्न हुआ है। लोक अपनी बात को अपने कथन को जिस विधि से कहता है वही लोककथा है। लोक कथा में लोक मानस की अपनी व्यथा-कथा और कल्पना, तथा रहस्य-रोमांच, विश्वास,रीति- रिवाज व्यवस्था, रूढ़ि और मिथक (लोक विश्वास) कार्य करते हैं। इन्हीं से लोक का हृदय कथा बुनता है। उसमें प्राण डालता है और लोक ही उसे मान्यता भी देता है। लोक कथाएं लोक का प्रतिनिधित्व करती हैं। गढ़वाली में कथा-कानी, बारता तीनों शब्दों का व्यवहार होता है। गढ़वाली की लोक कथाएं अपने वर्ण्य विषय के कारण निम्नवत् वर्गीकृत हैं -1'देवी-देवताओं की कथाएं , 2 परियों, भूतों,प्रेतों की कथाएं 3 आँछरियों की कथाएं 4 वीरगाथाएं 5 पशु पक्षियों की कथाएं 6 जन्मान्तर-पुनर्जन्म की कथाएं 7 रूपक और प्रतीक कथाएं 8 लोकोक्ति अप्सराओं की कथाएं। पक्षियों की गढ़वाली कथाएं निम्न रूपों में वर्गीकृत की गई हैं -

पक्षीकथाएं - चोली, घिडूडी,घुमती, कौआ, पता पुरकनी, जिस्ता, हाथी-टिटों, समुद्रभट्कुटरू, करैं, कठफोड़वा, सतरपथा-पुरै-पुरै,सौत्यापूत पुरफुरै, तिलरू, स्याल।

पशुकथाएं - स्याल हाथी की कथा /स्याल बाघ की कथा/स्याल भगवान की कथा/ ऊँट हाथी की कथा , बाघ और बटोहीकी कथा/हिरण स्याल और कौआ/ स्याल और तीतर।

ज्ञान नीति की कथाएं -अच्छी सलाह / दुखः में चितैकी, वफादार कुत्ता,महत्त्वाकांक्षा आदि इस प्रकार लोक कथा के अन्तर्गत कतिपय लोक कथाएं (देव विषयक) भी गिनी जा सकती हैं ।

व्रत कथाएं - पूर्णमासी,बैकुठं चतुर्दशी, शिवरात्री, संकटचौथ आदि की कथा भी गढ़वाली लोक साहित्य में प्रकारान्तर से प्राप्त होती है।

व्यंग्य कथाए - कन्हैयालाल डंडरियाल की हास्य व्यंग्य कथा के अन्तर्गत 'सत्यनारायण की कथा' इसका उदाहरण है। वर्तमान समय में श्री नरेन्द्र कठैत की व्यंगात्मक कथाएं /कहानियाँ बहुचर्चित हो रही हैं जिसमें उनकी 'धनसिंगै बागी फस्ट' कुल्ला-पिचकरी,कृतियाँ उल्लेख्य हैं।

### 9.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा

गढ़वाली के लोक साहित्य से पहले हम आपको गढ़वाली भाषा के लिखित रूप से परिचित कराएंगें। गढ़वाली भाषा की पहली विशेषता यह है किगढ़वाली उकारबहुला भाषा है और इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। गढ़वाली भाषा के आरम्भिक लिखित रूप का पता देवप्रयाग मंदिर के सन् 1335 के महाराजा जगतपाल के दान पात्र से चलता है यह विवरण गढ़वाली भाषा में निम्नवत् है -

"श्री संवत्1412 शाके 1377 चैत्रमासे शुक्ल पक्षे चतुर्थी तिथौ रविवासरे जगतीपाल रजवार ले0 शंकर भारती कृष्ण भट्ट कौं रामचन्द्र का भट्ट सर्वभूमि जाषिनी कीती जी यांटो मट सिलापट"।

अब देवलगढ़ में महाराज अजयपाल (1460-1519) का लेख देखिए

'अजैपाल को धरम पाथो भंडारी करौं उक'।

अब महाराजा पृथ्वीशाह (1664) का गढ़वाली में लिखा लेखांश प्रस्तुत है "श्री महाराजा पृथ्वीपति ज्यू का राज्य समये श्री माधोसिंह भंडारी सुत श्री गजेसिंह ज्यू की पलि परम् विचित्र श्री मथुरा वौराणी ज्यूल तथा तत्पुत्र अमरसिंह भंडारी ज्यूल पाट चढ़ाया प्रतिष्ठा कराई....."इन लेखों में दी गई गढ़वाली भाषा को पढ़कर अब आप जान गए होंगे कि इसमें गढ़वाली के साथ संस्कृत शब्दों की भरमार है

'ग्रियर्सन' ने गढ़वाली के विषय में लिखा है कि "यह स्थान-स्थान पर बदलती है। यहाँतक की परगनै की बोली का भी अपना भिन्न रूप है, प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है फिर भी गढ़वाली का अपना एक आदर्शरूप (स्टैण्डर्ड) है'।'' ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं जो निम्नलिखित हैं -

1- श्रीनगरी 2- नागपुरिया 3-बधांणी, 4-दसौल्या 5-राठी 6- टिहरियाली 7- सलाणी 8-माझ-कुमैय्या।

"किसी आदमी के दो लड़के थे'' इस वाक्य में इन भाषाओं के रूप देखिये-

1- श्रीनगरी- कै आदमी का द्वी नोन्याल छया।

2- नागपुरिया- कै वैख का दुई लौंडा छया।

3- दसौल्या- कई आदमी का दुई लडीक छया।

4- बधाणी- कै आदमी का द्वि छिचौड़ी छिया।

5-राठी- कै मनख की द्वी लौड़ छाया।

6- टिहरियाली- एक झणा का द्वी नौन्याल थया।

7-सलाणी- कै झणा का दुई नौना छया।

इस उदाहरण से आप समझ गए होंगे कि गढ़वाली की क्रियाएं एवं वाक्य स्थान-स्थान व (प्रत्येक जिले) में भिन्न हैं। फिर भी वे अच्छी तरह समझ में आ जाती हैं। संस्कृत से बिगड़े हुए तद्भव और शौरसेनी प्राकृत से ये रूप प्रभवित प्रतीत होते हैं। अब हम आपको गढ़वाली के लिखित लोक साहित्य की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित जानकारी दे रहे हैं।

### 9.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य

हर्षपुरी जी जिनके विषय में आप पहले भी अध्ययन कर चुके हैं उनके द्वारा लिखित कविता 'बुरोसंग'गढ़वाली में लिखित पहली गेय कविता है। जिसकी बानगी (स्वरूप) इस प्रकार है-

" अकुलौ माँ मायाँ करी कैकी बी नी पार तरी।

बार विधा सिर थरी,वैकु वि कू रोयेंद" ॥

इन्हीं का एक विरह गीत देखिए -

"आयो चैतर मास सुणा दौं मेरी ले सास।

वण-वणूडे सबी मौलीं गैन चीटे मौलिगैंन घास॥

स्वामी मेरो परदेश गै तो द्वी तीन होई गैन मास।

अज्यू तई सुणी नीमणी ज्यू को ह्वेगे उत्पास॥

जौ का स्वामी धरू छन तौंको होयुं छ विलास।

रंग-बिरंगे चादरे-ओढ़ी अड़ोस-पड़ोस-सुहास" ॥

सन् 1905 में गढ़वाली पत्र के प्रकाशन के बाद का कालखंड "गढ़वाली युग" के नाम से जाना जाता है। गढ़वाली युग के कवि सत्यशरण रतूड़ी की कविता द्रष्टव्य है।

" उठा गढ़वालियों, अब त समय यो सेण को नीछ

तजा यही मोह-निद्रा कू अजौं तैं जो पड़ी हीं छ।

अलो! अपणा मुलक की यीं छुरावा दीर्घ निद्रा कु

सिरा का तुम् इनी गेहरी खड़ा या जींन गेर याल्ये

अहो ! तुम भरे त देखा कभी से लोक जग्यां छन

जरा सी ऑख त ख्वाला कनोअब घाम चमक्यूँछ''।

तोता कृष्ण गैरोला के प्रेमी पथिक में कल्पना और रसान्विति इतनी सुन्दर है कि कविता में प्रकृति का बिंब स्पष्ट दृष्टि गोचर होने लगता है मन्दाक्रान्ता छन्द ने उनकी कविताओं पर चार चाँद लगा है -

चंदा आध सरद पर थै सर्कणी बादल्यूँमा

काँसी की-सी थकुलि रड़नी खत्खली खूल्याँमा।

निन्योर ये निजन बण का नौवल्या गीत गाणी

शर्दे रातैं शरदि लगणी, शीतली पौन-पाणी॥

अर्थात् आधा चन्द्रमा आसमान में बादलों के बीच में काँसे की थाली के समान रगड़ खाते हुए चल रहा है। नीचे धरती में निम्यारे, झिल्लीयॉ निर्जन वन में (झन-झन करते हुए) नए नवेली के गीत गा रहे हैं। शरद की रातों में सर्दी बढ़ जाने से पानी और हवा भी ठंडी हो गई है।

सिंह युग अथवा समाज सुधार युग - इस युग के मूर्धन्य कवि भजन सिंह 'सिंह'थे। उनके नाम से गढ़वाली कविता साहित्य का यह युग सिंह युग कहलाया। इस युग की कविताएं छन्दबद्ध, अलंकृत और समाज सुधार की भावना से ओत- प्रोत हैं। कविवर भजन सिंह 'सिंह'के सिंहनाद की कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

फ्रांस की भूमि जो खून से लाल छ

उख लिख्यूँ खून से नाम गढ़पाल छ

रैंदि चिन्ता बडौं तै बड़ा नाम की

काम की फिर्क रैंदी न ईनाम की

राठ मा गोठ मौं को अमर सिंह छयो

फ्रांस को लाम या भर्ति ह्वै की गयो।

ज्यौं करी धर मूं लाम पर दौड़िगे

फ्रांस मा, स्वामि का काम पर दौड़िगे।

नाम लेला सभी माइ का लाल को

जान देकी रखे नाम गढ़वाल को।

इस तरह सिंह युग की सभी कविताएं प्रायः देशभक्ति और बलिदान के साथ ही प्रकृति चित्रण तथा समाज सुधर-उद्यम, पुरूषार्थ आदि से ओत प्रोत हैं। आत्माराम गैरोला 'गढ़वाली युग' की एक श्रेष्ठ काव्य विभूति माने जाते हैं। उनकी कविता "पंछीपंचक'' से उदाहरण प्रस्तुत है -

अरे जागा कागा कब बिटि च कागा उड़ि उड़ी

करी काका काका घर घर जागोणू तुम सणी।

उठी गैन पंछी करण लगि गैन जय-जय

उठा भायों जागा भजन बिच लागा प्रभुजि का।

घुमूती घूगूती घुगति घुगता की अति भली

भली मीठी बोली मधुर मदमाती मुदमयी।

गढ़वाली में रचित यह कविता बहुत बड़ी है और शिखरणी छन्द में रची गई है। इसकी काव्यात्मक लय और शब्दावली संस्कृत के प्रभाव को लिए है।

बलदेव प्रसाद 'दीन' संवाद काव्य लिखने में अधिक सफल रहे हैं, उनकी लोक प्रिय रचना 'रामी' (बाटा गोडाई) और जसी आज भी गढ़वाली जनता के मुख से सुनी जा सकती है। रामी का संक्षिप्त काव्यरूप प्रस्तुत है -

बाटा गोडाई क्या तेरो नौं छे, बोल बौराणि कख तेरो गौं छ?

बटोही-जोगी ! न पूछ मैकू। केकु पुछदि, क्या चैंद त्वैकू ?

रौतु की बेटि छौं, रामी नौछ। सेठु की ब्वारी छौं,पालि गौंछ॥

विरह गीत लिखने में गढ़वाली कवि अधिक सफल हुए हैं क्योंकि पर्वतीय नारी की विवसता पति के परदेश जाने के कारण और बढ़ जाती है। गढ़वाल का प्राकृतिक सौदर्य, विरहणी नायिकाओं (नवविवाहिताओं) को अधिक सताता है। कवियों ने इन गढ़वाली बिरहिणियों के हृदय की चीत्कार और कर्मव्यथा को निस्सन्देह अपनी कविताओं और काव्य रूपों (खण्ड काव्य) (गीति काव्य) या (गीतिनाट्य) में प्रखर स्वर दिया है। पुरूष की विरह दशा का वर्णन चक्रधर बहुगुणा ने अपने कविता संग्रह मोछंग की छैला कविता में इस प्रकार किया है -

जिकुड़ि धड़क धड़क कदी, अपणि नी छ वाणी।

छैला की याद करी उलरिगे परागी।

पखन जखन सरग गिडिके, स्यां स्यां के विजुलि सरके

ढॉडु पड़ं तड़-तड़ के,रूण झुण के पाणी

छैला की याद करी उलगिरे पराणी ॥

पांथरी युग - भगवती प्रसाद पांथरी की कृति 'बजबांसुली' से यह युग शुरू होता है। इस परम्परा में 'भगवतीचरण' निर्मोही' की 'हिलांस' काव्यत्व की दृष्टि से उच्च कोटि की कृति मानी गई है। कहानी संग्रह भी इस युग में खूब निकले 'पाँच फूल' पांथरी जी का कहानी संग्रह है। भूतों की खोह, 'वासन्ती'आदि उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस युग के लेखकों में अबोधवन्धु बहुगुणा ने 'तिड़का,मण्डाण,घोल' अन्तिमगढ़ आदि प्रख्यात रचनाओं से अपनी विशेष पहचान बनाई थी। उन्होंने गढ़वाली का पहला महाकाव्य "भूम्याल'' भी रचा। कन्हैयालाल डंडरियाल का महाकाव्य नागरजा' इसी युग का प्रदेय है। भले ही यह काव्य बहुत बाद में प्रकाशित हो पाया। कुएड़ी, अज्वाल,मंगतु उनकी श्रेष्ठ काव्य कृतियाँ हैं। उनके गढ़वाली नाटक जो अभी तक अप्रकाशित हैं दिल्ली और मुम्बई में मंचित किये गए। उनका व्यग्य 'बागी उप्पन की लड़ै' लोक प्रिय खण्ड काव्य है। उनका 'नागरजा' एक कालजयी गढ़ावाली महाकाव्य है। गिरधारी प्रसाद 'कंकाल', सच्च्दिानन्द कांडपाल, डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' डा. गोविन्द 'चातक' डा.पुरूषोत्तम डोभाल, जीत सिंह नेगीआदि इस युग के श्रेष्ठ गढ़वाली साहित्यकार माने जाते हैं। इस काल खण्ड में मोहनलाल बाबुलकर एक समीक्षक के रूप मे उभरे हैं। इस युग में गढ़वाली साहित्य में शिल्प की दृष्टि और वर्ण्य विषयों की विविधता से एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। गढ़वाली में लिखे नाटब्कों की संख्या के विषय में बाबुलकर जी का मत है कि "इनकी संख्या लगभग 67है।नाटक लेखकों में ललित मोहन थपल्याल, स्वरूप ढौडियाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, महावीर प्रसाद गैरोला, उमाशंकर सतीशऔर नित्यानन्द मैठानी प्रमुख हैं।

आधुनिक युग:- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला इसे चतुर्थ चरण कहते हैं। इस कालखंड में चन्द्रसिंह राही का 'रमछोल' 1982 प्रकाश में आया। आत्माराम फोन्दानी का गीत संग्रह 'रैमोडी' के गीतों ने लोकरंजन किया उसके बाद 'चिन्मय सायर' मधुसूदन प्रसाद थपलियाल, निरंजन सुयाल, कुटजभारती के काव्य प्रकाश में आए। मधुसूदन प्रसाद थपलियाल ने गढ़वाली में गजल विधा को आरम्भ किया। उनकी काव्य पुस्तकें 'कस-कमर' और 'हर्षि-हर्वि' लोक प्रिय रही हैं। हास्य व्यंग्य विधा में कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा बनाए काव्य मार्ग पर सर्व प्रथम (रघुवीर सिंह 'अयाल') चले। अयाल जी के दो काव्य गुढयार (1988) पूर्णतः हास्य -व्यंग्य के छलकते रस कलश हैं। हास्य व्यंग्य विधा को ललित केशवान ने 'दिख्यांदिन तप्यांघाम' (1994) रचकर चरम शिखर तक पहुंचाने का प्रयास किया है। लोकेश नवानी की 'कभी दिल्ली

निजौं'सुप्रसिद्ध लोक प्रिय रचना स्वीकारी गई। कतिपय नए रचनाकार भी लगातार वर्तमान काल की समस्याओं को अपनी हास्य-व्यंग्यमय कविताओं को व्यंजना और वक्रोक्ति द्वारा अभिव्यक्त करने में सफल हो रहे हैं। नरेन्द्र कठैत का साहित्य इसका प्रमाण है। बाल साहित्य की कमी गढ़वाली में पहले से ही बनी रही है। अबोध बन्धु के 'अंख-पंख'के बाद कोई उत्कृष्ट बालरचनाएं प्राप्त नहीं हुई है। नए लेखक भी इसकी उपेक्षा कर रहे हैं

इस कालखण्ड के साहित्य की सूची आपके सरल अध्ययन हेतु प्रस्तुत की जा रही है।

| | कृति का नाम | कवि/लेखक | प्रकाशन वर्ष |
|---|---|---|---|
| 1- | द्वी ऑसू | सुदामा प्रसाद प्रेमी | सन् 1962 |
| 2- | गढ़ शतक | गोविन्द राम शास्त्री | '' 1963 |
| 3- | उज्याली | शिवानन्द पाण्डे | '' 1963 |
| 4- | रंत रैवार | गोविन्द चातक | '' 1963 |
| 5- | विरहिणी शैलबाला | पानदेव भारद्वाज | '' 1964 |
| 6- | वट्वे | सुदामाप्रसाद प्रेमी | '' 1971 |
| 7- | अग्याल | सुदामापसाद प्रेमी | '' 1971 |
| 8- | माया मेल्वड़ी | भगवान सिंह रावत | '' 1977 |
| 9- | पितरूकू रैवार | गोकुलानन्द किमोठी | '' 1979 |
| 10- | गढ़गीतिका | बलवन्त सिंह रावत | '' 1980 |
| 11- | समलौण | जग्गू नौटियाल | '' 1980 |
| 12- | कुयेड़ी | कन्हैयालाल डंडरियाल | '' 1990 |
| 13- | सिंह सतसई | भजन सिंह 'सिंह' | '' 1985 |
| 14- | गंगू रमोला | बृजमोहन कवटियाल | '' 1997 |
| 15- | पार्वती | अबोधबन्धु बहुगुणा | '' 1994 |

### 9.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य

उत्सव प्रिय गढ़वाली जन-मानस का चित्त जहां रमणीय अर्थवाली गीतिकाओं से आनन्दित होता रहा है, वहीं नाटकों में जो दृश्यऔर श्रव्य दोनों होते हैं से सर्वाधिक प्रभावित रहा है। नाटक देखने के लिए जितनी भीड़ जुटती है उतनी कविता सुनने के लिए नहीं। महाकवि कालिदास ने इसी लिए नाटक को महत्त्व प्रदान करते हुए लिखा है, 'काव्येषु नाटकं रम्यं' अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय है। महर्षि भरत ने, 'लोकःविश्रान्ति जनन नाट्यं- लोक की थकान मिटाने वाला,आनन्द प्रदान करने वाला, व्यवहारिक ज्ञान देने वाला, तत्व नाटक को माना है। गढ़वाली का नाट्य लेखन भवानी दत्त थपल्याल के 'जय विजय' और प्रह्लाद नाटक से शुरू माना जाता है। विश्म्भर दत्त उनियाल का 'बसन्ती', ईश्वरीदत्त जुयाल का परिवर्तन भगवती प्रसाद पांथरी के दो नाटक (क) भूतो की खोह (ख) अधः पतन, तथा गोविन्द चातक का 'जंगली फूल'अबोध बन्धु के नाटक- 'कचविडाल' 'अन्तिमगढ़'माई को लाल नित्यानन्द मैठानी की 'चौडण्डी' प्रेम लाल भट्ट का 'बॅट्वरू' कन्हैयालाल डंडरियाल के नाटक- कन्सानुक्रम, राजेन्द्र धस्माना का 'अर्धग्रामेश्वर' विश्वमोहन बडोला का 'चैतकी एक रात' ललितमोहन थपलियाल का नाटक 'एकीकरण' तथाउर्मिल थपलियाल का 'खाडू लापता' आदि सुप्रसिद्ध गढ़वाली नाटक हैं। इनके अतिरिक्त जीत सिंह नेगी का नाटक 'डॉडा की अएड' गोविन्द राम पोखिरियाल 'मलेथा की कूल' आदि उल्लेख्य हैं।

### 9.3.8 कहानी एवं उपन्यास

गढ़वाली में सर्वाधिक संख्या में कहानी लिखी गई हैं। कहानीकारों में रमाप्रसाद पहाड़ी, भगवती प्रसाद जोशी 'हिमवंतवासी' डा. उमेश चमोला, हर्ष पर्वतीय आदि उल्लेखनीय हैं। डा. गोविन्द चातक ने सर्वाधिक कार्य नाटकों पर किया है। अब हम आपके अध्यनार्थ गढ़वाली नाटकों की भाषा के कुछ अंश संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं -

प्रहलाद नाटक की भाषा:-

'कालजुगी,माराज मी पर गुस्सा न होवन। सरकार, मैंत सब ताड़नाकर चुक्यूॅ। ये पर बार-बार अर गुरू जी न भि ये तैं दिखाये खूब धुधकार-फुटकार,। परन्तु ये न जरा भर भिन छोडि बोलणा, नारेण-हरिकर्तार! यां ते महाप्रभु! कुछ आपही कराये को बिचार हमते होई गयां ये ते बिलकुल लाचार।'' -

अब विश्म्भर उनियाल के वसन्ती नाटक की काव्यभाषा प्रस्तुत है -

"दिदि,देख दौं हम लोंगू या कतना बुरो रिवाज छ कि नौन्यूं को ब्यौ बुडयो से कर देंदन। भई इना करण से त जैं दिन नोंनि निजै वे दिन हि दतेरे द्योन त अच्छो हो। जिंदगीभर का रोण-धोण से नि होण हि भलो''।

अब भगवतीप्रसाद पांथरी के नाटक 'अधःपतन' के संवाद देखिए -

"नैनुक्य सोनाकि कुंजी हि प्यार को दरवाजू खोल सकदी? पर क्य कंगाल कि हृदय कि अभिलाषा धूल मा हि लिपटण का होन्दी? वे का प्यारकी कुलाई कि डालि क्या दुसरूं का सुख की होलि। जव्नौण का हि लपकदि?''

राजेन्द्र धस्माना के 'अर्धग्रामेश्वर' की भाषा देखिए -

सूत्रधार- "अब ब्वनु क्या च माराज सुन्दरता मा यूडा दि छन हमरि ब्वनाच अब खुणैं भग्यान वक्नन्दा तै भग्यान भि छिन,अर गरीब ब्वलन्दा ते गरीब हुई अर एक चित दिखे जा।

इस प्रकार गढ़वाली नाटकों की भाषा सशक्त और अपनी मांटी की सौंधी गंध लिए हुए है।

## 9.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य

लोकवार्ताएं केवल देवी-देवताओं के जागर में नृत्यमयी उपासना के बीच सुनाई जाती है। प्रायःरात ही उसके लिए उपयुक्त होती हैं रात में देवता का नृत्य देखने के लिए एकत्र हुए लोगों के मनोरंजन के लिए कभी वार्ताएं आवश्यक समझी जाती थीं। आज भी लोकवार्ता का महत्त्व वैसे ही बना हुआ है जैसे पहले था। लोकवार्ता का काई भी ज्ञाता व्यक्ति मंडाण अर्थात् देववार्ता सुनने और देवता का नृत्य देखने के लिए एक समूह के बीच में बैठते हैं और अवसर पाते ही समूह के बीच से उठकर दोनों हाथों से अपने कानों को दबाकर या उनके छिद्रों में उंगली डालकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ता है वह वार्ता के आमुख के रूप में ढ़ोल या डमरू(डौंर) बजाने वाले औजी (वादक) को संबोधित करता है।

देवी देवताओं की वार्ता के समय सभी श्रोता एवं दर्शक भक्तिभाव से बैठे रहते हैं। देवी-देवताओं के समान ही अनिष्ट कारिणी शक्तियों जैसे (भूत,आँछरी) आदि की मनौती के लिए भी उन्हें नचाने खेलवाने के लिए नृत्य के साथ गीत गाए जाते हैं। उन वार्ताओं में कथा का अंश बहुत होता है और उसको रांसो कहा जाता है। डा. गाविन्द चातक इसे 'रासो' से उत्पन्न मानते हैं उनका मानना है कि बोल-चाल में रासो का अर्थ धर्म कथा होता है। कहानी का ध्येय मूलतः मनारंजन होता है लेकिन रासो मनुष्यों को देवताओं और आँछरी,आदि के भय से निर्मुक्त करने की नृत्यमयी उपासना है। लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य के अन्तर्गत -गढ़वाली का वृहत अलिखित साहित्य लोकवार्ता के रूप में आज भी मौजूद है। एटकिन्सन ने भी गढ़वाल के इतिवृत्त लेखन में लाकवार्ता साहित्य की मदद ली। उसने यहां की धार्मिक गाथाओं, तथा यहाँ के ऐतिहासिक अनैतिहासिक वीरों, राजाओं, महाराजाओं, वीरांगनाओं के गीतों को लोगों के मुख से सुना और उनसे यहां की सभ्यता-संस्कृति व भाषा का विश्लेषण किया। गढ़वाली लोकवार्ताएं राजस्थान,गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल के लोकवार्ता साहित्य के समकक्ष है।

गढ़वाल की देव गाथाओं में भूगोल के साथ-साथ इतिहास की जानकारी भी मिलती है। विशेषकर तंत्र-मंत्रऔर देव गाथाओं में पौराणिक भूगोल का वर्णन मिलता है जैसे - देवलोक जाग नागलोक जाग ! खारा समुद्र जाग, अन्तरिक्ष लोक जाग। इनके साथ ही गढ़वाल के प्रमुख पर्वत,नदी,घाटी, गुफाएं वन आदि का वृतान्त मिलता है। यहां के भड़ों और राजाओं की विरूदावली व वंशानुचरित भी गढ़वाली लोकवार्ता के अन्दर मिल जाते हैं।

## 9.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- गढ़वाली लोक साहित्य से परिचित हो गए होंगे.
- गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास से भी परिचित हो गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास प्राप्त कर चुके होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं को जान गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य के विभिन्न युगों(काल-खंडों) को जान गए होंगे

## 9.6 शब्दावली

1. सृजित - बनना , निर्मित होना
2. आस्तिक - ईश्वर पर आस्था रखने वाला
3. मानस - मन, हृदय
4. मूर्धन्य - बड़ा, विशेष
5. चीत्कार - चीखना, चिल्लाना
6. उत्कृष्ट - अच्छा, सर्वश्रेष्ठ

## 9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्र.उ. 1 (क) सोमदेव (ख) गुणाड्य (ग) पातीराम (घ) योगेन्द्र पुरी

प्र.उ. 2 (क ) मिथक -पुराने लोक विश्वासों,पौराणिक कथा एवं गाथाओं को 'मिथक' साहित्य कहा जाता है। मिथक में सत्य का विस्थापन होता है। जैसे हम कहें उषा के बाद सूर्योदय होता है तो मिथककार उसे कहता है -सूर्य उषा का पीछा करता है।

प्र.उ. 3 तीन प्रमुख पक्षी कथाएँ निम्नलिखित हैं:-

(1)भटकुटुरू (2) चोली (3)सतर पथा-पुरै-पुरै (4) पता-पुरकनी।

प्र.उ. 4-अजयपाल का धर्मपाथो (अनाज मापने का बर्तन ) भंडारियों के यहाँ है।'

प्र.उ. 5-ग्रियर्सन ने गढ़वाली भाषा के विषय में कहा है कि 'यह स्थान-स्थान पर बदलती है। यहां तक कि परगने की बोली का भी अपना भिन्न रूप है। प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है । और गढ़वाली का अपना एक आदर्श (स्टैण्डर्ड) रूप है। ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं।

प्र.उ. 6– "किसी आदमी के दो लड़के थे''। इसका रूप नागपुरी और बधाणी में निम्नवत् होगा -

(क) नागपुरिया बोली में- कै बैख का दुई लौंडा छया।

(ख) बधाणी बोली में -कै आदमी का दिव् छिचौड़ी छिया।

प्र.उ. 7 'सिंह युग' की गढ़वाली कविताओं की 4 विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

(1) सुधारवादी दृष्टिकोण (2)छन्दबद्ध कविताएं व गीत (3)लोक से जुड़ी गढ़वाली भाषा का काव्यात्मक प्रयोग (4)संवाद परकता।

प्रश्नोत्तर 8- बाटागोडाई (रामी) लोक गीत -लोक काव्य के स्वचिता का नाम है -बल्देव शर्मा 'दीन'।

## 9.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची


1. गढ़वाली लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

## 9.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास को विस्तारपूर्वक समझाइए .

2. गढ़वाली लोकसाहित्य के क्रमिक विकास की विवेचना कीजिए .

# ईकाई10 गढ़वाली लोक गीत- स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 गढ़वाली लोक गीत : एक परिचय
10.3.1 गढ़वाली लोक गीतों का वर्गीकरण
10.3.2गढ़वाली लोक गाथागीतों की प्रमुख विशेषताएं
10.3.3गढ़वाली लोक गाथागीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां
10.3.4 गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां
10.3.5 'चांचड़ी' लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं
10.5 सारांश
10.6 अभ्यास प्रश्न
10.7 पारिभाषिक शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

## 10.1 प्रस्तावना

गढ़वाल अने प्राकृतिक सौन्दर्य, धार्मिक स्थानों का केन्द्र स्थल और सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक विरासत के कारण सर्वत्र पहचाना जाता है। हिमालय के पांच खण्डों में एक खण्ड केदारखण्ड है। यही आज गढ़वाल मंडल है। प्राचीन साहित्य में इसे इलावृत्त, ब्रह्मपुर, उत्तराखण्ड, रुद्रहिमालय, चुल्ल हिमवन्त, कृतपुर, कार्तिकेयपुर के नाम से अभिहित किया गया है। गढ़वाल नाम सम्भवत 1500ई. पूर्व जब अजयपाल ने छोटे-छोटे बावन गढ़ों को जीतकर अपने एकछत्र राज्य की नींव डाली, तब से प्रकाश में आया है। सम्भवतः गढ़ों की अधिकता के कारण या गढ़ों वाला प्रदेश होने से इसका नाम गढ़वाल पड़ा होगा। इस नाम के पड़ने पर विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। इसका अध्ययन संक्षेप में आप पन्द्रहवी इकाई में कर चुके हैं। यहां के प्राचीन निवासी कौन थे, यह कहना कठिन है। पिछले कुछ वर्षों में मध्य हिमालय में जो पुरातात्विक उत्खनन हुये उनसे कुछ प्रमाण जरुर मिले है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रागैतिहासिक काल में यह क्षेत्र यक्ष, किन्नर, गंधर्व, नाग, किरात, कोल, तंगण, कुलिन्द, खस आदि जातियों की निवास भूमि रहा है। गढ़वाल में यक्ष पूजा के अवशेष मिलते हैं।

गढ़वाल के रबाई क्षेत्र में बसने वाले किन्नौर कहलाते हैं। किरात कुमांऊ, नेपाल, और गढ़वाल में राजी या राज किरात या किरांती नाम से जाने जाते है। भील कभी भिल्डा नाम से जाने जाते थे। भिलंग, भिलंगना, भल्डियाना नाम वाले अनेक स्थान आज भी गढ़वाल में है। साथ ही नागों के स्थान की सूचक नागपुर पट्टी यही गढ़वाल में है। बाद में राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल और दक्षिण से भी यहां लोग आये और बस गए। उत्तराखण्ड की भाषा गढ़वाली में द्रविड, कोल, नाग आदि जातियों की भाषाओं का सम्मिश्रण स्पष्ट दिखता है। कई नृवंशों की छाप गढ़वाली शब्द सम्पदा में शब्द रुप में तथा समाज में सांस्कृतिक मेलापक के रूप में देखी जा सकती है। भाषाओं के इस मेलापक और सांस्कृतिक घाल मेल वाले गढ़वाली लोक के लोक जीवन के बीच उपजे गीत भी उनकी वृहत सांस्कृतिक विरासत का स्मरण कराते है। डा. गोविन्द चातक का मत है कि 'लोक गीत जीवन और जगत की अभिव्यक्ति करते है। उनमें कोई विषय वर्जित नहीं होता है'।गढ़वाल के लोकगीत भी इस सत्य के अपवाद नहीं है। उनका कहना है कि गढ़वाल के कुछ नृत्यों के आधार पर वर्गीकृत हुए है। छोपती, तान्दी, थाड्या, चौंफुला, झुमैलों आदि नृत्यों के नाम हैं और उनके साथ गाये जाने वाले गीतों को भी ये ही नाम दे दिएगए है। यही बसन्ती, हरियाली, माघोज, होली, दीवाली, पंचमी, ऋतु तथा त्यौहारों में पायी जाती है। जैसे चैती ऋतु गीत हैं, गढ़वाल में अब सभी संस्कार गीत उपलब्ध नहीं हैं। मृत्यु के गीत केवल रबाई जौनपुर में प्रचलित हैं। गढ़वाल में व्यापक रूप में विवाह के गीत मिलते है, उनको मांगल कहा जाता है। देवी देवताओं के नृत्यमयी उपासना के गीत जागर कहलाते है। कुछ भागों में झूड़ा और लामण गीत भी मिलते हैं। गीतों के स्थानीय नामों तथा उनके वर्ण्यविषयों में अधिकांशतः कोई आधारभूत एकता नहीं है। उदहारण के लिए नृत्यों पर आधारित गीतों का नामकरण गीतों के भावसाम्य उपेक्षा सा करता है। चौंफुला, झुमैलों, चांचरी, तान्दी, थाड्य आदि नृत्यगीत अपने

वर्ग के गीतों की भाव तथा विषय सामग्री की एकता छादित नहीं करते है। जैसे- कोई चौंफुला प्रेम का है तो कोई लड़ाई का। वे अपने वर्ग के गीतों की ताल गति और लय का पालन तो करते हैं परन्तु भाव और विषय की अनुरूपता इनमें नहीं दिखती है। नृत्यों के अतिरिक्त गीतों की शैली, गाने के अवसर आदि को भी लोक ने वर्गीकरण का आधार बनाया है। प्रेमगीत इसके उदहारण है। छोपती, लामण, बाजूबन्द तथा अन्य प्रेमगीत रस की दृष्टि से एक ही कोटि में आते है। इस तरह लोकगीत गढ़वाल में प्रचलित या विभाजित वर्गीकरण में धार्मिक लोकगीत, संस्कारगीत, वीरगाथागीत, प्रेमगीत, स्त्रियों के गीत, नीति उपदेश, व्यवहारिक ज्ञान के गीत और विवाहगीत, जनआन्दोलनों, के गीत प्रमुख हैं।

'औजी'वाहक चैत के महीने में 'चैती'गाते हैं। हास्य-व्यंग्य, राष्ट्रीय चेतना के गीत अब विलुप्ति के कगार पर हैं। केवल आन्दोलनों के गीत सृजे जा रहे हैं। उत्तराखण्ड आन्दोलन पर श्री नरेन्द्र सिंह नेगी के गीत सर्वाधिक लोकप्रिय हुए हैं और उनकी आगे भी सनातन प्रासंगिता बनी रह सकती है। बसन्त ऋतु में गाए जाने वाले गीतों चैती, बसंती, झुमैलों और खुदेड़ गीतों के सृजन की सम्भावना बनी रहेगी। बाल गीत अब समाप्त हो गए है। लोकगीतों में कभी इनकी भी तूती बोलती थी। युगान्तर में 'माँ'के मदर और पिता के 'डैड'हो जाने पर माँ की लोरीवाले वात्सल्यमय लोकगीतों को अब सुनने को कान तरस रहे है। प्राचीन घटना मूलक गीत भी अब शेष नहीं बचे हैं। कुछ गीत मुगल और गोरखा आक्रमण के बचे हैं। आजादी के लिए जो जन आन्दोलन हुए थे उनकी स्मृति भी लोकगीतों के रुप में बची है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के ऐतिहासिक दौर में गांधी, नेहरु, सुभाष, श्रीदेव सुमन पर लोकगीतों की रचना हुई। जन समस्याओं को लेकर भी लोकगीत लिखे गए और अब भी सर्वाधिक रूप में लिखे जा रहे हैं। गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई, बाघ,टिड्डी, अकाल, बाढ़ और आपदाओं पर पहले भी लोकगीत रचे गए और वर्तमान में भी इन पर लोकगीत रचे जा रहे हैं।देवपूजा के लोकगीत आज भी अपने जीवन्त रुप की साक्षी दे रहे हैं। पाण्डवों से सम्बन्धित पंडवार्ता, मंडाण, नागराजा को नचाने की लोकवार्ता, घंडियाल, बिनसर, कैलावीर, महासू, क्षेत्रपाल 'जाख' नरसिंह और भैरवनाथ देवी आदि जो गढ़वाल के स्थानीय लोकदेवता हैं उन पर आधारित लोकगीत, लोकवार्ता (जागर) के रूप में मौजूद हैं। गढ़वाल के ये विविध प्रकार के लोकगीत गढ़वाल की लोकमान्यता, विश्वास, धार्मिक तथा संस्कृति स्वरुप और आमोद-प्रमोद के परिचायक हैं। ये लोकगीत सचमुच में गढ़वाल के लोक मानस को जानने पहचानने के ज्ञानकोष हैं।

## 10.2 उद्देश्य

इस इकाई का अच्छी प्रकार अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि -

1. लोकगीत किसे कहते है और उनकी विषय वस्तु में लोकतत्व कैसे समाया रहता है ?
2. गढ़वाली लोकगीतों का स्वरूप कैसा है ?

3. डा. गोविन्द चातक और मोहनलाल बाबुलकर द्वारा किया गया गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण कैसा है- क्या है ?

4. गढ़वाली लोकगीतों के पद्यात्मक साहित्य की विशेषताएं क्या है ?

5. प्रमुख गढ़वाली लोकगीत कौन-कौन से हैं ?

6. लोकगीतों के कथानक और उनकी शैली से परिचित हो सकेंगे।

7. लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं तथा उनकी प्रवृत्तियों को जान सकेंगे।

### 10.3.1 गढ़वाली लोकगीत एक परिचय

लोकगीत, लोक मानस के चित्त की रागात्मक अभिव्यक्ति का स्वरूप है। मन जब हर्ष-विषाद और रोमांच तथा आश्चर्य से तंरगित या क्षुब्ध होता है, तब मानव मन के ये सुप्त रागात्मक 'स्थाई भाव' रस में परिणित होने के लिए 'गीत'का रुप धारण करते हैं। 'गीत'में छन्द तुक और लय का विधान होता है। 'गढ़वाल'प्रकृति का एक अद्भुत उपहार है। यहां की प्रत्येक वस्तु कवितामय है। नीरव- उतुंग शिखर, हिमानी चट्टानी, बर्फीले चमकदार पहाड़, नीला विस्तृत आकाश, नयनभिराम पशु-पक्षियों का क्रीड़ागंन गढ़वाल अपनी मोहकता से गीतों के सृजन के लिए अनाम कवियों को युगों-युगों से आमंत्रण देता रहा है। मानों अनेक लोकोत्सव और मेले-त्यौहार इस देवभूमि में गीतों को बिछाते और ओढ़ते हैं। 'गीत'यहां की संस्कृति का प्राण तत्व हैं। अतः संस्कारों, क्रियाओं, रीति-परिपाटियों के गीत भी अलग-अलग रूप के हैं। प्रमुखतः छोपती, तान्दी, थाड्या, चौफुंला, झुमैलों आदि यहां के लोक के नृत्य हैं लेकिन इन नृत्यों में जो गाया जाता है वह गीत इन्ही नृत्यों के नाम पर छोपती गीत, थाड्या गीत, तान्दी गीत चौफुला और झुमैलों गीत के नाम से पहचाने जाते हैं। चौफुंला प्रेम का गीत है तो कोई वीरता का, कोई वन्यजीव के आक्रमण का वर्णन प्रस्तुत करता है तो कोई चौफुंला हास्य का पुट लिए होता है। चौफुंला गीत अनेक भावों पर आश्रित होते हैं।, इनके नृत्य में हाथ, पैरों और शरीर की नृत्यमुद्रा का पद क्रम भी भिन्न-भिन्न होता है। विवाह के गीत संस्कार गीत हैं जिन्हें मांगल कहा जाता है। छोपती, लामण, बाजूबन्द आदि प्रेमगीत भाव और रस की दृष्टि से एक ही कोटि में आते हैं।

तथपि इनका युक्तिसंगत वर्गीकरण निम्नवत किया जा सकता है-

1. धार्मिक गीत 2. संस्कारों के गीत 3. वीरगाथा 4. प्रेमगीत 5. स्त्रियों के गीत 6. नीति-उपदेशों वाले गीत 7. राजनीति एवं समाज सुधार और आपत्ति (अकाल, बाढ़ पशु व्याघ्रादि का आतंक) पर आधारित गीत और विविध गीत, बाल गीत आदि।

गढ़वाल में ऋतुगीतों की अपनी अलग ही पहचान है। ऋतुगीतों में चैती सर्वाधिक लोकप्रिय और परम्परागत गीत हैं। कुमांऊ में इसे ऋतुरैण (ऋतुओं की रानी) कहा जाता है। इस

गीत को औजी या बादक चैत के महीने में गाते है। यही नहीं बादी जाति इन गीतों को गाती ही नहीं बनाती भी है। ये सब गीत, जातियों की दृष्टि से बने हैं, लेकिन ये गीत सभी में फैले हैं। किसी वर्ग विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं। भले ही एक वर्ग विशेष इनका रचयिता एक गायक होता है। ये गीत उनके व्यवसायिक हित को भी साधते हैं। चैत के महीने औजी (आवजी, बाद लड़की (घयाण) के माईके से उसके ससुराल में जाते हैं और चैती गाकर ससुराल पक्ष से दक्षिणा प्राप्त करते हैं। ऋतुगीतों का अपना लोक पर भारी प्रभाव हैं ये काव्यात्मकता लिए हुए होते हैं। बसन्त ऋतु कर गीत प्रस्तुत है- ''उलरया मैना, ऐगे खुदेंड़ बसन्त, बारा रितु बौड़ी ऐन बारा फूल फूलेन!''बासलो कफ्फू मेरा मैत्यों की मैती,। यह गीत नवविवाहिता के मन को करुणा और वात्सल्य तथा श्रृंगाररस से ओत-प्रोत कर देता है। अधिकांश गीत जीवन की क्षणभंगुरता को भी प्रदर्शित करते है। 'छूड़ा'छोपती की अपनी विशेषताएं अलग हैं। 'छूडे'भले ही प्रेम गीत नहीं हैं लेकिन अन्य विषयों के साथ मिलकर प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। 'बाजूबन्द'श्रृंगारी युगल जनों का एकान्तिक प्रेम गीत हैं। त्यौहारों के गीत, होली, चौमासे और वर्षा ऋतु में कुयेड़ी के लौंकने पर एक करुण दृश्य की संरचना कर देते हैं। विरहतप्त, पर्वतीय नारी के हृदय की कोमल भावनाएं मायके की याद में कभी अपने परदेशी पति की याद में प्रकट होकर वातावरण को गमगीन कर देती है। एक गढ़वाली गीत प्रस्तुत है-

''काला डांडा पछि बाबाजी काली छ कुयेड़ी

बाबाजी मैं यखुली लगदी डेर

यखुली मैन कनके की जाण विराणा विदेश ?

आज दिउलू बेटी तने हाथी-घोड़ा

त्वै दगड़ जाला लाडी तेरा दीदा भुला

त्वै लाड़ी मैं यखुली नी भिजौऊ''

हिन्दी भावार्थ है,''काले पर्वत के पीछे पिताजी काले बादल है। पिताजी! मुझे अकेले डर लगता है। मैं पराए देश कैसे जाउंगी। पिता कहता है- पुत्री मैं तेरे आगे पूरी बारात भेजूंगा। तेरे पीछे हाथी, घोड़े भेजूंगा। तेरे साथ बेटी तेरे भाई जायेंगे, बेटी मैं तुझे अकेले नहीं भेजूंगा। मैं तुझे गायों के गोठ दूंगा, मैं तुझे बकरियों की डार दूंगा''।

झुमैलों- यह गढ़वाली नृत्यगीत गढ़वाल की धरती को जब अपने गायकों की कंठध्वनि और पैरों की क्रमागत धम्म-धम्म की ध्वनि से गुंजित करता है तब संगीत और श्रृंगार भाव का एक साथ अवतरण हो जाता है और मन में गुदगुदी होने लगती है। कहीं-कहीं पर 'करुण' रस भी चित्त को भिगों देता है। एक उदहारण प्रस्तुत है-

''ऐगैन दादू झुमैलों, रितु बौडीक झुमैलो

बरा मैनों की झुमैलों, बारा बसुन्धरा झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों को रितु प्यारी झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों, बसंत ऋतु प्यारी झुमैलों''।

झुमैलों गीत लड़कियों द्वारा मायके की याद में गाये जाते हैं । जिनकी टेक ही झुमैलों होती है। इनके साथ वे झूमकर नृत्य करती हैं। ये गीत बसन्त पंचमी से विषुवत संक्रान्ति तक चलते हैं।

खुंदेड़ गीत- ''जै भग्यान का ब्वे बाबू होला

स्ये उंका सहारा मैतूड़ा जाला

मेरा मैत छपन्याली डाली, कुल्यां की छाया

ये पापी सैसर रुखड़ा डांडा दायां, बायां''।

अर्थात्- ''जिस भाग्यवान बेटी के माता-पिता होंगे वे उसे मायके बुलाएंगे। उनके सहारे वह मायके जाएगी। मेरे मायके में छतनार चीड़ के वृक्षा की छाया है। इस पापी ससुराल में दाएं-बाएं रुखे पर्वत ही पर्वत है''।

प्रणय गीत- ये गीत अपने पति की याद में विवाहिता स्त्री द्वारा गाए जाते हैं वह गीत में अपने पति को अपना दर्द बताती है और मिलन की तड़फन जतलाती है और कालिदास की विरहिणी नायिका की तरह बादलों को देखती, नदियों, पक्षियों से अपना रैबार भेजती है। अपने प्रेमी को उलाहना भी देती है। गढ़वाली में प्रेम गीतों में देवर-भाभी, जीजा-साली के गीत बहुत प्रचलित हैं। 'बाजूबन्द'भी श्रृंगार के अतिरंजन पूर्ण मादक वर्णन भरे होते है। ये एकान्तिक, प्रेमी-प्रेमिका के मिलन-विद्रोह के गीत है।

निष्कर्षतः श्रृंगार, प्रेम, वासना, करुणा और धर्म विश्वास इन लोक गीतों का प्राणतत्व है। संगीत की मादकता और गीत की बानगी उसके बोल मन को उमंगित करने में समर्थ होते हैं- उदाहरण के लिए एक गीत प्रस्तुत है-

''नाच मेंरी वीरा, तेरा घुंघरू बाज्या छम

घुगता की घोली, तेरी रुबसी धिची होली

कुछ भर्या आंख्योन, कुछ भर्या गोलीन

मेरों हिया भरियूं, छ तेरी मीणी बोलीन"।

अर्थात्-

''हे मेरे हृदय की रानी वीरा! (प्रेमिका का नाम) तेरे घुंघरू छम-छम बजते हैं। मेरा हृदय तेरी मीठी बोली से भरा है। प्यारी। अपने हृदय पर तू चिन्ता का बोझ मत डाल तू मेरी आखों में रीठे की दानी जैसी घूमती है। तूने मुझे अपनी बांकी नजर से मार डाला है। मेरा हृदय तेरी मीठी बोली से भर गया है। तेरी खूबसूरत गोल मुखाकृति घुघते के घोल सी सुन्दर है"।

निष्कर्ष- लोकगीत गढ़वाली लोक साहित्य की एक प्रमुख विधा हैं। ये लोक जीवन से उपजते हैं तथा जीव और जगत की अनुभूति करके सृजे जाते हैं। इनमें कोई भी विषय ऐसा नहीं हैं जो लोकगीतों के वर्ण्य विषय के अन्तर्गत न आता हो। वर्गीकरण के आधार पर इन्हें संस्कारों, रासनुभूतियों, सामाजिक क्रियाओं, रीतियों, त्यौहारों और जातियों (छन्दों गेयात्मकता) के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। गढ़वाली लोकगीत यहां के नृत्यों के आधार पर भी नामांकित किए गए हैं। जैसे- छोपती, तान्दी, थाड्यो, चौफुलों, झुमैलों आदि गढ़वाली नृत्यों के नाम है लेकिन उनके गीतों के भी इसी नाम से पुकारते हैं। विवाह के गीत, मांगल कहलाते है, 'संस्कार गीत'भी बहुप्रचलित है। देवी-दवताओं के गीत जागर या लामण, झूड़ा गीत के रुप में प्रसिद्ध हैं। मोहनलाल बाबुलकर ने इन्हें धार्मिक गीत, संस्कार गीत, वीरगाथा, प्रेमगीत, स्त्रियों के विरह गीत, नीति उपदेश तथा व्यवहारिक ज्ञान सम्बन्धित गीत और विविध गीत के रुप में विवेचित किया गया है। औजी वादक चैती या ऋतु गीत गाते हैं। यहां हम आपकी जानकारी के लिए संक्षिप्त में इन गीत रूपों का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है। ऋतुगीत का उदहारण है-

''उलर्या मैनों ऐगे खुदेड़ बगत,

बार रितु बौड़ी ऐन, बार फूल फूलेन।

सरापी जायान मां जी विधाता का घर

केक पाली होलु मांजी निरासू सी फूल

गौं की नौनी स्ये गीत बासन्ती गाली

जौकी बोई होली मैतुड़ा बुलाली"।

गढ़वाली पक्षी, तोता, हिलांस, कफ्फू, घुघती बसन्त के आगमन की सूचना देते हैं। उनके स्वरों से अचेतन मन में सिहरन सी उठती है। विहरणी स्त्री 'कफ्फू'पक्षी को अपने मैत (मायके) से आया पक्षी मानकर गीत गाती है-

बासलों कफ्फू मेरा मैत्यों कू मैती

कफू बासलो मेरा मैत्यों की तीर।

कफू बासलो नई रीति बौड़ली

कफू बासलो मेरी ब्वे सुणली

मैकू ताई, कलेऊ भेजली।

मेरा मैती सुणला ऊं खुद लगली।

'खुद'इन गीतों का मुख्य वर्ण्य विषय होता है। कुमांऊनी में इसे 'नराई'कहते है। लोक साहित्य में हिलांस, कफ्फू, धुधती आदि पक्षी नारी उत्पीड़न के प्रतीक के रूप में लोक धारणा में घर किए हुए हैं। इनके जीवन में गढ़वाली नारी अपने ही अन्तर्मन की छाया पाती है। धुधती के विषय में एक जनश्रुति यह भी है कि उसकी विमाता (कही सास) ने उसे जब वह नारी थी मारा था। आज भी वह पक्षी बनकर के 'धुधती'वासूती (मां सोई है) पुकारती हुई अपनी मां को खोजती है।

गढ़वाली गीत प्रेम से भी लबालब भरे होते हैं। एक छोपती गीत प्रस्तुत है-

काखड़ की सींगी, मेरी भग्यानी हो,

रातू कु सुपिमा देखि, मेरी भग्यानी हो,

दिन आख्यूं रींगी, मेरी भग्यानी हो,

ढोल की लाकूड़ी मेरी भग्यानी हो,

तू इनी दिखेन्दी, मेरी भग्यानी हो,

छोपती में संयोग-वियोग दोनों अवस्थाएं मिलती है। प्रेमगीतों के अन्तर्गत 'बाजूबन्द'में भी छोपती के समान ही संवादगीत होते हैं। अन्तर इतना है कि छोपती चौक में नृत्य के साथ समूह में गाई जाती है और बाजूबन्द दो स्त्री- पुरुष के बीच निजता के साथ वनों के एकान्त में गाए जाते हैं। 'छूड़े'प्रेमगीत तो नहीं है पर उनमें अन्य विषयों के साथ प्रेम की अभिव्यक्ति भी होती है। मूलतः वे सूत्र रुप में गठित सूक्ति गीत कहे जा सकते है। इनमें कुछ गीत जीवन और जगत की क्षणभंगुरता पर आश्रित है। कुछ गीत भेड़ पालकों के जीवन पर आधारित है। कुछ प्रेम सम्बन्धी है और कुछ नीति, आदेश या उपदेश सम्बन्धी इनके नायक वे ही प्रेमी-प्रेमिका होते है जो जीवन में किसी पीड़ा को लेकर जी रहे है। कई गीत समायिक समस्याओं पर भी रचे जाते है। त्यौहारों के गीत, आन्दोलनों के गीत, हास्य-व्यंग्य गीत, बाल गीत आदि। स्वतन्त्रता आन्दोलनों के दौर में गांधी, नेहरु, सुभाष पर गीत बने, अकाल, टिड्डी दल, गरीबी, बेरोजगारी गीतों के विषय बनते रहे है, जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

### 10.3.2 गढ़वाली लोकगीतों का वर्गीकरण

मोहनलाल बाबुलकर का लोकगीतों का वर्गीकरण वैज्ञानिक है। संक्षेप में उनका वर्गीकरण देखिए-

| | |
|---|---|
| संस्कारों के गीत | जन्म |
| | विवाह |
| | मृत्यु |
| देवी-देवताओं के स्तुति गीत | होली गीत |
| | नगेला गीत |
| | गंगा माई केगीत |
| | देवी के गीत |
| | भूमि पूजन के गीत |
| | कूर्म देवता के गीत |
| | हरियाली के गीत |
| | हनुमान पूजा गीत |
| | हील प्रस्तुति |
| | खितरपाल पूजन गीत |
| | अग्नि के गीत |
| खुदेड़ गीत | भाई के सम्बोधित गीत |
| | सास, ननद, जेठानी की निन्दा से सम्बन्धित गीत |
| | मां को सम्बोधित बेटी के गीत |
| | भादो और असूज, चैत के महीने गाए जाने वाले गीत |
| | फल-फूलों को सम्बोधित गीत |
| | मायके को सम्बोधित बेटी के गीत |
| विरह गीत | |
| सामूहिक गीत | थड्या, चौफुंला |
| तंत्र-मंत्र के गीत | रखौली |
| | समौण |
| | सैठाली |
| | नुखेल |
| | प्रभाव मोचक गीत |

| | |
|---|---|
| लघु गीत | बाल गीत (लोरियां)<br>अक्कू-मक्कू<br>अरगण-बरगण<br>घुघती-वासूती<br>नौनीकती वीस |
| वादियों के गीत | घौंघा<br>भामा<br>र्यूजी<br>छुमा<br>कुसुमाकोलिन<br>जीजा-साली<br>लसकमरी<br>डिबली भकम वम सरैला<br>गणेसी, हे यारि रिंजरा, गएली आदि |

एवं सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों पर आधारित गीत-

1. युद्धगीत एवं दानियों पर आधारित गीत।
2. नया जमाना।
3. नेता विषयक गीत।
4. आर्थिक संकट के गीत।
5. संक्रान्ति के गीत।
6. स्थानीय विषयों पर सम्बन्धित गीत।

### 10.3.3 गढ़वाली लोकगाथा गीतों की प्रमुख विशेषताएं-

लोकगाथा गीत के लिए अंग्रेजी में 'बैलेड'शब्द का प्रयोग किया जाता है। शब्दकोष के अनुसार- बैलेड वह स्फूर्तिदायक या रोचक कविता है, जिसको कोई जनप्रिय आख्यान रोचक ढंग से वर्णित होता है। इसी प्रकार प्रोफेसर किटरेज न बैलेड को ऐसा गीत कहा है- ''जिसमें कोई कहानी हो अथवा वह कहानी हो, जो गीत के माध्यम से व्यक्त की गई हो''।डा. सत्येन्द्र लोकगाथा गीत में कथा और गेयता को अनिवार्य मानते है। कतिपय अन्य विद्वानों ने भी

लोकगाथा गीत की परिभाषा में मौखिक परम्परा और अज्ञात स्वयिताओं को भी सम्मिलित किया है। डा. दिनेश चन्द्र बलूनी के अनुसार, 'मानव सभ्यता के साथ-साथ नृत्यों, गीतों एवं गाथाओं का विकास हुआ होगा। जो मौखिक परम्परा के आधार पर श्रुतिरुप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचते गए। मौखिक परम्परा के आधार पर ही ये लोक जीवन में फैले हुए हैं। अस्तु उनमें परिवर्तन एवं परिवर्द्धन का पूरा समय मिलता रहा है। इसलिए लोकगाथा गीतों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि लिपिबद्ध करने पर इनकी गति एवं प्रगति रुक जायेगी, क्योकि लोकगाथा गीतों की जीवनशक्ति उनकी मौखिक परम्परा में ही निहित है। यह भी देखने में आता है कि कतिपय लोकगाथा गीतों का आदान-प्रदान स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं किया जाता है, ऐसे लोकगायक अपनी विद्या को प्रायः निश्चित् शिष्य परम्परा को ही देना चाहते है। क्योंकि इनके पीछे धार्मिक भावना और पवित्रता से जुड़ी हुई भावना निहित रहती है। फलतः कई लोकगाथाएं मंत्रों के समान अकाल-काल कवलित भी हो गई है। इस प्रकार लोकगाथा 'गी'लिखित और अलिखित गेय काव्य रचना है, जिसमें किसी लोक प्रिय आख्यान, घटना अथवा नायक के वर्णन के साथ-साथ ऐतिहासिक जो प्रायः विवादग्रस्त होती है'। उत्तराखण्ड गढ़वाल में लोकगाथा गीतों की एक समृद्ध परम्परा है। इन गाथा गीतों की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियां इस प्रकार है।

### 10.3.4 लोकगाथा गीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

1. संगीतात्मक- गढ़वाल के गाथागीत गेय और छन्दबद्ध होते है। गेय होना लोक गाथा गीत की प्रमुख विशेषता है। इसके सम्बन्ध में डा. प्रयाग जोशी का कथन है कि ''गाथा की रंगत गाने में है, कहने में नहीं''।गायन की परिपाटियां (लोकधुने) लोक में पीढ़ियों से निर्धारित है। उसमें सहजता और सरलता लाना लोक गायकों का अपना व्यक्तिगत गुण है। यहां तक कि गाथा का अर्थ समझे बिना भी मात्र लय के आधार पर करुणा, श्रृंगार, वीर और अन्य भावों की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। गाथागायन में अधिकांशत रुप से गायक किसी न किसी वाद्य प्रयोग करता है। राग-रागिणियों की शास्त्रीय विशेषताओं से परिचित न होन पर भी गाथागायकों का स्वर सधा हुआ रहता है।''इससे प्रतीत होता है कि रचना-विधान के लचीले होने के कारण भी लोकगाथा गीत को इच्छित राग में ढाला जा सकता है। गढ़वाल के लोकगीतों में संगीत के साथ-साथ नृत्य का भी विधान मिलता है''।

2. टेकपद की पुनरावृत्ति- लोकगाथा गीतों की सबसे बड़ी विशेषता टेकपद की पुनरावृत्ति मानी जाती है। डा. उपाध्याय का मानना है कि गीतों की जितनी बार दुहराया जाए उतना ही उनमें आनन्द आता है। इन टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक होकर श्रोताओं को आनन्द प्रदान करते है। उदहारण के लिए पांडव गीत गाथा का एक गाथा गीत प्रस्तुत है-

''कोंती माता सुपिन ह्वे गए, ताछुम, ताछुम

ओडू-नोडू आवा मेरा पांच पंडऊ, ताछुम, ताछुम

तुम जावा पंडऊ गैंडा की खोज, ताछुम, ताछुम

सरादक चैंद गैंडा की खाल, ताछुम, ताछुम"।

समूह में गाए जाने वाले गाथा गीतों में गायक जब एक कड़ी गाता है, तो समूह के लोग टेकपद को दुहराते हैं। पुनः पुनः टेकपद की आवृत्ति से श्रोता गीत के भाव को समग्रता के साथ ग्रहण करने में सक्षम होता है।

3. दीर्धकथानक- लोकगाथा गीत का आरम्भिक रुप चाहे जैसा भी रहा हो, कालान्तर में उनके कथानक दीर्ध होते गए, इसका कारण यह भी है ये गाथाएं अतीत में श्रुतिपरम्परा के आधार पर एक गायक ये दूसरी तथा दूसरी से तीसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती रही हैं। हस्तान्तरण के इस क्रम में मूल गाथा गीत के रुप के स्वरुप में कितना परिवर्तन होता है। इसे कहना कठिन है। लोकगाथा द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों के साथ पौराणिक आख्यानों को जोड़कर गाथा में प्रस्तुत कर देने से उनमें अमानवीय तथा पराप्राकृतिक तत्वों का समावेश हो गया, मूल गाथा के स्वरुप में इससे परिवर्तन तो आया ही उसका विस्तार भी हो गया। इस तरह लोकगाथा गीतों का कलेवर बढ़ता रहा है, और अतिशयोक्तियां भी इन गीतों के वर्ण्य विषयों की मूल आवश्यकता बन गई।

4. जनभाषा का प्रयोग- लोकगाथा की भाषा चिर नूतन रहती है। इसकी भाषा लोकगाथा के जीवन्त रूप का प्रतिनिधित्व करती है। लोकगाथा गीतों का प्रचार-प्रसार मौखिक परम्परा से होता है। अतः इस परम्परा में अप्रचलित शब्दों के स्थान पर गायक प्रचलित शब्दों का प्रयोग सहज भाव से करता है। गढ़वाल के लोकगाथा गीतों में गढ़वाली भाषा-बोली की मिठास गाथागायन में सर्वत्र मिलती है।

5. स्थानीय विशेषताएं- लोकगाथा गीत स्थान विशेष की संस्कृति और उसकी परम्पराओं का दिक्दर्शन भी कराते हैं। क्योकि लोकगाथाएं जीवन्त साहित्य का उत्कृष्ट रूप होती है। वे जहां-जहां पहुंचती है वहां की स्थानीय विशेषताओं को अपने में समाहित कर लेती हैं। स्थानीय वातावरण की सृष्टि करना ही लोकगाथा गीत की सबसे बड़ी विशेषता है, यदि स्थानीय वातावरण एवं देश काल की छाप लोकगाथा में नहीं है तो वह लोकप्रियता अर्जित नहीं कर पाती है। यहां आपकी जानकारी और इस मत की पुष्टि के लिए हम उदाहरणार्थ गंगू रमोला की लोकगाथा को प्रस्तुत कर रहे हैं -

रमोली- द्वारिकाधीश कृष्ण को स्वप्न में गंगू का राज्य दिखाई देता है। कृष्ण ने गंगू से दो गज भूमि तपस्या के लिए मांगी, किन्तु उसने देने में आना-कानी कर दी। वह समझता था कि कृष्ण आज दो गज भूमि मांग रहा है कल पूरा राज्य मांग लेगा। गंगू की लक्ष्मी, बकरी के सिर में निवास करती थी। बकरी बाहर वीसी रेवड़ के साथ कुलानी पाताल चरने गई थी। कृष्ण ने उसी जंगल में प्रवेश किया और दिव्य बांसुरी से लक्ष्मी मोहिनी सुर बजाया, बकरी श्रीकृष्ण के पीछे-

पीछे खिंचती चली आई। गंगू की लक्ष्मी का हरण कर कृष्ण अपनी द्वारिका लौट गए। इस प्रसंग में 'स्थानीयता' रमोली की रमणीय भूमि कुलानी पाताल बकरियां आदि स्थानीय वातावरण को प्रस्तुत कर रही है। जिससे लोकगाथा सीधे रमोली उत्तराखण्ड गढ़वाल से सीधे जुड़ गई है। लोकभाषा के शब्द भी स्थानीयता को प्रस्तुत करने में सहायक होते है।

6. उपदेशात्मक प्रसंगों का अभाव- गढ़वाल की इन लोकगाथा गीतों में संस्कृत की नीति कथाओं का नीति श्लोकों की तरह उपदेशात्मक नहीं मिलती है। लोकगाथा में अत्याचारी को उसके दुष्कर्म के लिए दण्डित किए जाने की बात अवश्य वर्णित रहती है, त्यागी-तपस्वी और परोपकारी व्यक्ति की प्रशंसा मिलती है। गाथागायक लोकगाथाओं को सुनाते हुए धर्म की रक्षा, और अधर्म के नाश को जोर देकर श्रोताओं तक पहुंचाता है। ताकि लोक इन लोकगाथाओं से अच्छी शिक्षा ले सकें और बुरी आदतों को छोड़ सके।

7. संदिग्ध ऐतिहासिकता- गढ़वाली की लोकगाथाएं गीत रूप में भी प्राप्त होती है। इनमें अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन मिलते हैं। भले ही पात्र इतिहास और पुराणों से लिए होते हैं लेकिन उसके पराक्रम दान, ज्ञान और अन्य जीवन व्यापार इतने अतिरंजित कर वर्णित किए जाते हैं कि वें इतिहास न होकर तिलस्मी पात्र जान पड़ते हैं। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में इतिहास गौण पड़ जाता है और ये पूरी तरह काव्यानिक प्रतीत होने लगती हैं। इसका कारण श्रुत परम्परा से धटनाओं का विस्तृत होना माना जा सकता है। इनमें इतिहास तत्व, संकेत मात्र रह जाता है।

8. मौखिक परम्परा- लोकगाथा गीत लोकगाथा गीत के अनाम रचयिता के मुख से लोक में उतरते हैं, ये लिखित नहीं अपितु श्रुत होते हैं अतः परम्परा से सुने जाने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी आगे चलते रहते हैं। इनेक लोकगाथा गीत अब भी अलिखित अवस्था में हैं और परम्परागत लोकगायकों द्वारा मौखिक रूप से गाए जा रहे हैं। इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि लोकगाथा गीत तभी तक जीवित रहते हैं जब तक उनकी मौखिक (वाचिक) परम्परा है। लिपिबद्ध होने पर उनका विकास रूक जाता है। यद्यपि डा. गोविन्द चातक, मोहनलाल बाबुलकर, डा. प्रयाग जोशी आदि ने कुछ लोकगाथा गीतों को संग्रहीत करने का प्रयास किया है फिर भी लिपिबद्ध लोकगाथा गीतों की संख्या बहुत कम है।

9. लोकरुचि के विषय- ये गढ़वाली लोकगाथा गीत लोक रूचि के अनुसार, प्रेम, त्याग, बलिदान, भक्ति आदि धर्म के मूलतत्वों पर आधारित होने से लोकरुचि को जाग्रत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं । इन भावनाओं को गेय और काव्यबद्ध रुप में प्रस्तुत करके लोकगाथा गायक यथावसर समाज में अपना जादू बिखेर देता है और लोकगाथा-गीतों से जुड़े समागमों में बड़ी भारी भीड़ को जुड़ती देखकर कोई भी ऐसा अनुमान सहज ही लगा सकता है कि लोगों की इन लोकगाथा गीतों को सुनने में कितनी रुचि है।

10. विद्वता का अभाव- लोकगाथा गीतों में विद्वता, अलंकरण और कृत्रिमता का अभाव रहता है। अर्थात लोकगाथाओं से साहित्य का सौन्दर्य नहीं रहता है। गाथाकार की अभिव्यक्ति, रस, छन्द अलंकार के बन्धन से दूर लोकरुचि का ध्यान रखती है जिससे उसकी सहज लोकगाथा में प्रस्तुत लोकगाथा गीत, अनगढ़ रचना होते हुये भी समाज द्वारा स्वीकृत होती है और श्रुति परम्परा से चलती रहती है। ये अनगढ़ लोकगाथा गीत अपनी गेयता के कारण तथा कथानक जैसी प्रस्तुति के कारण समाज में अपनी जाग्रत अवरूथा में रहते है। जब भी सामान्य साहित्यिक गीत लोगों द्वारा विसरा दिए जाते हैं।

11. सामूहिकता- लोकगाथा गीत जन सम्पत्ति हैं वे परम्परा से लोक द्वारा संरक्षित किए जाते रहे हैं। वे एक बड़े समुदाय के मनोरंजन के साधन है तथा लोकपरम्परा में धर्म और संस्कृति के संवाहक भी माने जाते हैं। अंग्रेजी के बैलेड शब्द का अर्थ नृत्य करना है। लगता है आदिम समाज में लोकमानस में गाथा गीतों की परम्परा में नृत्य भी प्रचलन में रहा होगा। तब क्रमोत्तर इनमें गीत के साथ संगीत और क्रमबद्ध नृत्य पद संचालन भी आरम्भ हुआ होगा। 'पंडों'ऐसा ही एक लोक गाथा गीत है जो अब नृत्यनाटिका का रुप ले चुका है। लोकगाथा गीत समूह में गाए जाने वाले गीत है जिनमें नृत्य की भी एक विशेष परिपाटी है। तथा एक विशेष अवसर पर ही इनका गायन-वादन होता है।

12. निष्कर्ष- गाथागायन पद्धति हमारी बहुत पुरानी पद्धति है। ऋग्वेद और ब्राहमण ग्रन्थों में भी अनेक गाथागीत संस्कृत ऋचाओं एवं श्लोकों में प्राप्त होते है। बौद्धकाल में गाथाएं समाज में प्रमुख मनोरंजन का साधन बन चुकी थी। भगवान बुद्ध ने कहा था कि मैं उसी कन्या से विवाह करुंगा जो गाथा-गायन में प्रवीण हो।

प्राचीन 'गाथासप्तशती' आदि रचनाएं समाज में लोकगाथाओं की गहरी पैठ के प्रमाण है। गढ़वाल में लोकगाथा गायक एक समृद्ध परम्परा है जो जागरियों, वाद्य वादकों (आबजी) और ब्राहमणों के द्वारा वाचिक रुप में आज भी सुरक्षित है। राजस्थान में पवाड़े के रुप में थे वीरगाथा गीत आज भी जनता में जोश जगा रहे हैं। भारत के सभी प्रान्तों की लोकभाषाओं में उनके लोकगीत है। उनकी गाथा गायन भिन्न-भिन्न पद्धतियां है और उनकी अपनी धुनें है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में लोकगाथा गीतों का विकास उस समय हुआ होगा जब फ्रान्स आदि देशों में रोमांस साहित्य का सृजन हो रहा था। यूरोप में बैलेड का विकास सोलहवीं शताब्दी तक हो चुका था। इंग्लैण्ड का लोकगाथाओं में राबिन हुड सम्बन्धी प्रणयगाथाएं अत्यन्त लोकप्रिय है। स्कॉटलैण्ड के 'सर पैट्रिक स्पेस' 'द कुअल ब्रदर'और 'एडवर्ड'जैसे कथागीत, तो फिनलैण्ड और इटली तक प्रचलित है। कालान्तर में यूरोपिय जातियों के साथ वे अमेरिका पहुंच गए। डेनमार्क में 'बैलेड'प्रायः औलोकिक पृष्ठभूमि वाले होते है। जिनमें जादू-टोना और रुपान्तरण जैसी बाते मुख्य होती है। गढ़वाली लोकगाथा गीतों में गेयता क साथ-साथ कथानकों में जादू होना और रुपान्तरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। सम्भवत इन लोक गाथाओं

की वर्ण्य विषय वस्तु में परस्पर आपसी साहचर्य के कारण ये तत्व धुल मिल गए हो। लेकिन उन अनाम लोक गाथाकारों की ये अनगढ़ रचनाएं मानस की लोकचेतना से अलग नहीं की जा सकती है। ये अपनी माणिक संरचना में भी अनगढ़ रहने पर भी सभी के द्वारा सहज बोधगम्य होती है क्योकि ये लोकगाथा में लोकतत्व तथा उसके श्रुत इतिहास को लेकर सदियों से लगातार वाचिक परम्परा से चली आ रही है।

### 10.3.5 गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

अपनी प्रभूत विशेषताओं के लिए हुए गएवाली लोकगाथा गीतों की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां भी है। अब हम उन प्रवृत्तियों की संक्षिप्त जानकारी दे रहे हैं । इन प्रवृत्तियों को रुढ़ियां भी कहा जा सकता है। क्योंकि अधिकांश गाथाओं में ये एक जैसी देखने में आती है। ऐसा लगता है जैसे इनका लोकगाथा के वर्णन में आना अनिवार्य सा अपरिहार्य हो। ये प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-

1. प्रेम, विवाह तथा सुन्दरियों को जीतकर लाने वाली प्रवृत्ति- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में प्रेम, विवाह और सुन्दरियों की चर्चा अधिक मिलती है। जैसे- राजुला, मालूसाही में सौक्याणी देश (तिब्बत) को सुन्दरियों का निवास स्थान बताया गया है। कई भड़ स्वप्न में उनका दर्शन करके उन्हें पाने के लिए उतावले हो उठते है और उनकी खोज में चल पड़ते है। वहां उनके पतियों को हराकर सुन्दरियों को जीतकर ले आते है। योगी बनकर, योगी का वेश धारण कर प्रेयसी से मिलने का प्रयास, गढ़वाली लोकगाथा गीतों में वर्णित मिलता है। कुमांऊ में प्रचलित गंगनाथ गाथा में नायक जोगी का वेश बनाकर जोशीखोला में 'भाना' से मिलने आता है। राभी बौराणी में भी उसका पति जोगी का रुप धारण कर रानी के पातिव्रत्य की परीक्षा लेता है। श्रीकृष्ण गंगू के पास जोगी का वेश धारण कर उसकी रमोली में मिलते है और मुझसे भूमि मांगते हैं।

2. सतीत्व रक्षा को प्रमुखता- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में स्त्री अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मबलिदान देने (सती) होने को तत्पर रहती है। गढ़ू सुम्याल की गाथा में गढ़ू कहता है 'यदि मेंरी मां विमला सतवन्ती होगी और मैंने उसके सहस्रधारों वाला स्तनपान किया होगा तो मेरी रधुकुंठी धोड़ी आसमान में उड़ने लगेगी'। अनेक गाथाएं इसकी प्रमाण है रणूरौत की गाथा में ,रणूरौत की माता अमरावती अपने पुत्र रणूरौत से कहती है कि तेरी मंगनी तेरे पिता ने स्यूंसला से की थी। मुझे आज 'मेधू कलूनी'जबरदस्ती ब्याहकर ले जा रहा है। तुझे मेरी कसम है अपने शत्रु को मारकर स्यूंसला का डोला जीत कर ला। युद्ध में रणू के मरने के बाद स्यूंसला उसकी चिन्ता में कूदकर अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई प्राण दे देती है। कालू भण्डारी कर गाथा में भी कालो भण्डारी के द्वारा बेदी के मंडप में छः फेरे फेर देने वाले रुपू को मार देने के बाद 'रुपू'के भाई 'लूला गंगोला'के द्वारा कालू भण्डारी को मार देने पर वह नवविवाहिता रुपू और काले भण्डारी के शव को अपने दोनों जांधों में रखकर चिता में भस्म हो जाती हैं। कफ्फू चौहान की गाथा में भी

उसकी पत्नि और मां 'देवू'के द्वारा कफ्फू की सेना के पराजित हो जाने के समाचार को सुनकर चिता बनाकर जल जाती है। तैड़ी की तिलोगा की प्रेमगाथा में भी तिलोगा अमरदेव सजवाण के मारे जाने पर अपने दोनों स्तन काटकर अपनी आत्महत्या कर देती है। तिगन्या के डांडे में चिता बनाकर अमरदेव सजवाण के साथ तिलोगा के शव को भी भस्म कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रेमी के साथ प्रेमिका की जीवनलीला का अन्त दिखाना गढ़वाल लोकगाथा गीतों की भरमार रही है।

3. जन्म व सन्तान सम्बन्धी रुढ़ियां- जन्म के समय नक्षत्र आदि के सम्बन्ध में गाथाओं में प्रचलित रुढ़ियां सर्वत्र एक जैसी मिलती है। जैसे- वीर का पुत्र ही होगा, 'जिसके बाप ने तलवार मारी उसकर बेटा भी तलवार मारेगा' । वंशानुक्रम परम्परा का वर्णन क्रम भी एक जैसे वणित जैसे- ''हिवां रौत का भिवां रौत, भिवां रौत का राणू रौत" ।

4. शकुन-अपशकुन सम्बन्धी रुढ़ियां- शकुन-अपशकुन वाली प्रवृत्ति गढ़वाली लोकगाथा गीतों में सर्वत्र मिलती है। 'जीतू बगड़वाल' की गाथागीत में जब जीतू अपनी बहिन को बुलाने जाता है तो उसकी मां द्वारा बकरी के छींकने को अपशकुन बताया गया है। इसी पकार राधिका गाथा गीत में जब राधा की माता उसकी ससुराल के लिए पुवे बनाती है तो पहला पुवा तेल में डालते ही नीला पड़ जात है, यह देखा राधिका की मां शंका से व्याकुल हो उठती है- और सोचती है ''न जाने मेरी राधिका कैसी होगी"?

5. स्त्री को दोहद की इच्छा- वीर पुरुष की स्त्रियां दोहद अवस्था में अपने वीर पति को मृग का मांस खाने की इच्छा प्रकट करती है। तब वीर पुरुष अपनी नवविवाहिता पत्नी की दोहद इच्छा पूरी करने के लिए जंगल में जाकर शिकार खेलने जाता है और वहां संकट में फंस कर मर जाता है, जो विजयी होकर आता है उसके विषय विलास का भव्य वर्णन लोकगाथा गीत प्रस्तुत करते हैं कि उसकी रानी ने अपना कैसा श्रृंगार किया है। इस वर्णन में अश्लीलता नहीं रहती लेकिन अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रहता हैं।

6. कोमल संवेदनाओं से जुड़े लोक विश्वास- गढ़वाली लोकगाथा गीत, आस्था विश्वास और रुढ़ियों से जुड़े हुए है। ज्योतिष पर विश्वास, शकुन-अपशकुन की धारणा, लोक रुढ़ियां जैसे- सुअर का धरती खोदना, सूखी लकड़ी ढोता आदमी, कान फड़फड़ाता कुत्ता, भेड़ियों और ऊल्लू की आवाजें, हंसिया या कुदाली-फावड़े पर धार चढ़ाते समय उसका चटकना आदि अपशकुन के रुढ़िगत विश्वास है। शुभ संकेतो में पानी का गागर भर कर लाने वाली स्त्री, कबूतर या धुधती पक्षी का दिखना शुभ माना जाता है।

7. तन्त्र-मन्त्र में विश्वास- ये लोकगाथा गीत, तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव का भी बखान करते है। जोगियों के कांवड़ की जड़ी, बोक्साड़ी विद्या, ज्यूदाल, तुम्बी का पानी आदि में गढ़वाली जनमानस का विश्वास इल लोकगीतों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय होता है। जगदेव पंवार और सदेई

की गाथा में बलिदान का महत्त्व सिदुवा-विदुवा का संकट काल में सहायक होना आदि लोकविश्वासों का भी वर्णन गाथागीतों में मिलता है। निष्कर्षतः लोकगाथा गीत लोक विश्वास और आस्था को लेकर रचे गए मिथकीय आख्यान गीत है जो परम्परा के वाचिक साहित्य के रुप में चले आ रहे है।

7. 'चांचड़ी' लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं- पूर्व में अभी हमनें आपकों गढ़वाली के लोगाथात्मक गीतों की प्रकृति एवं विशेषताओं से परिचित कराया था, उसमें आपने बाजूबन्द, थड़िया, चौफुलस, तान्दी, छोपती आदि गीतों के बारे में जाना था। चांचडी़ के अन्तर्गत पूर्व में वर्णित सभी प्रकार के गीत, जिन्हें नृत्यगीत भी कहा जाता है आ जाते है। आपकों यह भी अच्छह तरह जान लेना चाहिए कि चांचड़ी के अन्तर्गत आने वाले सभी प्रकार के गीत है। इन्हें नृत्यगीत भी कहा जा सकता है और नृत्यों के नाम भी वहीं है जो गीतों के नाम पर है। जैसे- बाजूबन्द लोकगीत भी है और लोकनृत्य भी, उसी प्रकार थाड़या या चौफुला गीत भी है तो नृत्य भी। इन सभी नृत्य या लोकगीतों को 'चांचरी'के नाम से पुकारा जाता है। चांचरी या चांचड़ी गीतों के विषय में नन्दकिशोर हटवाल का कहना है कि ''मेरे विचार में ढ़ंकुड़ी, चांचरी, चांचड़ी, झोड़ा, थाड़या, झुमैला, दुस्का, जोड़ ज्वैड़, छोपती, तान्दी आदि ये सब नाम एक ही गीत नृत्य के लिए प्रचलित नाम है। जैसे- कई बार चांचरी नृत्य में प्रचलित विविध प्रकार के हस्तबन्धनों, पदसंचालनों, पदगति अथवा अन्य प्रकार के अलंकारों को अलग नाम से पहचानने या सम्बोधित किए जाते है। जैसे- कि कुमांऊ के कुछ इलाकों में चांचड़ी-झोड़ा जब तेज गति से होने लगता है तो उसे धसेल, धस्येला, धौंस्योला या दरी भी कहते है। हटवाल ने अनेक विद्वानों द्वारा वर्गीकृत किए गए लोकगीतों की तुलना करके अपना निर्णय दिया है कि इन विद्वानों ने भी प्रकारान्तर इन लोकगीतों को एक ही वर्ग का माना है। जो चांचड़ी के अन्तर्गत आ जाते है। वे झुमैलों को संस्कृत के 'जम्मालिका' से निष्पन्न मानते हैं तथा महाकवि कालिदास के समय में भी ऐसे कुछ लोकगीत एवं लोकनृत्य कर प्रचलन था स्वीकार करते है। वे लिखते है चांचरी नृत्य का उल्लेख महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीयम नाटक में भी किया गया है। इसमें चर्चरी नृत्य का अर्थ गीत-खेल-क्रीड़ा और ताल देना बताया गया है। गढ़वाली में 'र' की ध्वनि 'ड़' में परिवर्तित हो जाने से चाचरी या चांचरी-चांचड़ी हो गई। गढ़वाली- कुमांऊनी में 'ज' की ध्वनि 'झ' में बदल जाती है। अतः जोड़ा का 'झोड़ा' शब्द नृत्यगीत के लिए व्यवद्वत होने लगा है। डा. गोविन्द चातक के अनुसार, 'जो नृत्य अवकाश के अवसर पर आंगन (थाड़्) में होते है उन्हें 'थाड़्या' कहा जाता है। 'स्थल'या समतल भूमि में खेले जाने ये यह स्थाल्या ये बिगड़कर 'थाड़्या' बना है। गढ़वाली में यही शब्द 'थाल' या 'थौल' के रुप में भी प्रयुक्त होता है और 'थाड़्' के रुप में भी! डा. चातक लिखते है,'लोक आमोद-प्रमोद से सम्बन्धित नृत्य प्रायः सामाजिक नृत्यों के अन्तर्गत आते है। स्थान परिस्थितियों और काल के अन्तर के कारण अनेक नामों से पुकारे जाते है'।मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली गीतों का वर्गीकरण करते हुए थाड़या गीतों को सामूहिक गेय गीत वर्ग में रखा है, तथा 'सुमेलों'को खुदेड़ गीत माना है। डा. पोखरियाल ने अपनी पुस्तक 'कुमांऊनी लोकगीत और लोकगाथाएं' पुस्तक में चांचरी और

झोड़ा को दो पृथक-पृथक वर्ग में जिन गीतों के साथ रखा है वे भाव वर्ण्यविषय, टेक्निक आदि की दृष्टि से देखने में एक समान लगते है। अतः स्पष्ट है कि चांचड़ी, थाड्या, झोड़ा एक ही प्रकार का नृत्यगीत है। इनकी कुछ विशेषताएं निम्नवत् है-

8. चांचड़ी लोकगीतों की विशेषताएं-

1. टेक- इन उपरिवर्णित लोकगीतों (नृत्यों) में लोकगाथाओं और इतिहास पुराण का धाल-मेल है। चांचड़ी नृत्य गीतों में लोकगाथाओं को जिनमें 'जीतू बगड्वाल' पांडव, सिदुवा-विदुवा, सूर्जकौल, माधो सिंह भण्डारी क गाथाएं आती है में 'द्विभाई रम्बोला रम्मा छम्मा' या 'जीतू बगड्याला जीतू मारि झमाको' 'टेक' लगने से ये गाथा गीत गाने में सुन्दर तुकान्त और कर्णप्रिय लगते हैं । साथ ही नृत्य में पद विन्यास भी पद ध्वनि की सामूहिक थाप पर एक मधुर समां बांध देते है। टेक इन गीतों की एक विशेषता है, जो कि बार-बार दोहराई जाती है। जैसे- उपर दो टेक पंक्तियां उदहारणार्थ दी गई है।

2. पट्टदार शैली- लोकगीतकार पट्ट शैली के माध्यम से चांचड़ी गीतों की रचना करते है। इसे जोड़ मिलना भी कहते है। इस शैली में लोक रचनाकार तुक और छन्द मिलाने के लिए प्रथम पद को निरर्थक बनाते है जैसे-'हलीवो रुकमस डोट्याली' या 'कियो मेरो कले लछिमा' भांगुली को प्योण आदि को उदहारण नन्दकिशोर हटवाल ने दिए है। कई लोकगीतों में टेक और पट्टदार शैली दोनों की तकनीक एक साथ प्रयुक्त मिलती है। जैसे- 'सरभायों गढ़वल छो छम बल' या 'गणेशी जा गणेशी घौर'।

3. संवादात्मक शैली- गढ़वाली लोकनृत्य गीतों में संवादों और प्रश्नोत्तरों की एक विशेष शैली विकसित हुई है। जीजा-साली, देवर-भाभी, नायक-नायिका के गीत प्रायः संवाद या प्रश्नोत्तर शैली में मिलते है। लोकगाथाओं में लम्बे संवाद गीत मिलते है। सिदुवा-विदवा का गीत इसका प्रमाण है। श्री नन्दकिशोर हटवाल के अनुसार- कभी-कभी एक की प्रश्न को बार-बार दोहराने और उत्तर देने में भी बार-बार पूर्व पंक्तियों के दोहराव के सज्ञथ महज एक नया शब्द जोड़ देने की तकनीक अपनाकर लम्बे-लम्बे गीत तैयार हो जाते है।

4. सम्बोधन शैली- का प्रयोग भी लोकगीत को रोचक बनाता है। चांचड़ी लोकगीत, करुणा, दुखः-सुख और वियोग-श्रृंगार के भाव गीतों में और अधिक द्रवणशीलता ले आते है। नायिका, धुधती, पहाड़ी, कुएड़ी आदि को देखकर पिताजी यां मां को सम्बोधित करके अपने मन के भावों को व्यक्त करती है- धार्मिक गाथा गीतों में भी सम्बोधन शैली की प्रचुरता मिलती है।

5. श्रृंगार रस की प्रचुरता- आधुनिक समय में बहुत से पुराने गीत आज भी अपनी ताजगी से लोकमानस का चित्त हरण कर लेते है। इन्हें सुनकर श्रोता भाव विभोर हो उठते है। जैसे- ''पोसतू का छुमा, मेरी भायानी बौ'' के बौल और उसकी टटकी लोकधुन, नवयुवक-युवतियों

और रसिको को भाव विभोर कर देती है। आगे इस गीत का संक्षिप्तांश आपकी जानकारी के लिए गढ़वाली एवं उसके हिन्दी अनुवाद सहित दिया जा रहा है- 'जीजा-साली के गीत' प्राचीन समय से ही ही गढ़वाली लोकमानस की रुचि के विषय रहे है और आज भी नई नई धुनों और गीतों की नई शैली तथा नृत्यनिर्देशन के सज्ञथ लिखे और प्रदर्शित किए जा रहे है। जैसे- सुप्रसिद्ध नृत्यगीत है- ''ग्वीरल फूल फुलिगे म्यारा भीना''। यह ऋतुगीत भी है। इसके बोल देखिए-

''ग्वीराल फूल फुलीगे म्यारा भीना,

मलू-बेड़ा फ्योंलडी फुलिगे भीना

झपन्यालि सकिनि फुलिगे भीना

धरसारी लगड़ी फुलिगे भीना

झूल थान कूंजू, फुलिगे भीना

गैरी गदिनी तुशारि फुलिगे भीना

डांडयू फुलिगे बुरांस, म्यारा भीना

डल फूलों बसन्त, बौड़िगे भीना

बसन्ती रंग मा, रंगैदे म्यारा भीना

ग्वीराल फूल फुलीगे, म्यारा भीना।''

अर्थात् हे जीजा जी! ग्वीराल के फूल खिल गए हैं। मालू, बेजू, फ्योंली खिल गए है। पत्तेदार सकिना फूल गया है। हे! जीजा जी! घर के नजदीक की सरसों फूल गई है, कुनजू फूल गया है। छोटी पहाड़ी नदी के किनारे की 'लुसरी' फूल गई है। वृक्षों में फूल आने लगे गए है। बुरांश की डालियां फूल गई है। जीजा जी! डालियों पर बसन्त फूल खिलाने आ गया है मुझे भी तुम बसन्ती रंग में रंग दो। जीज जी! ग्वीराल (कचनार) के वृक्षों पर फूल खिलने लग गए है।

गढ़वाल लोकगीतों में भी श्रृंगार रस अपनी प्रभूत मात्रा में प्राप्त होता है। गढ़वाल की प्राकृतिक छटा ही ऐसी ही कि यहां के युवाओं के हृदय में अपने आप श्रृंगार पनपनें लगता है और वह अपनी संमोहकता से नायक-नायिका को भाव-विभोर कर देता है। बड़े-बड़े शूरवीर (भड़) भी इसके सम्मोहन से बच नहीं पाते हैं- कहते है 'रुक्मा' माधोसिंह भण्डारी की प्रेमिका थी। कुछ लोगों का कहना है कि वह माधो सिंह की भौजाई (भाभी) थी। माधोसिंह भण्डारी पर आधारित गीत देखिए-

''कनु छ भण्डारी तेरो मलेथा?

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा

मेरा मलेथा धांड्यो को धमणाट

मेरा मलेथा बाखर्यों को तादो।

कैसो छ भण्डारी तेरो मलेथा ?

देखेण को भलों मेरा मलेथा।

लगदी फूल मेरा मलेथा।

गौं मुड़े को सेरो मेरा मलेथा

गौं मथे को पंधारों मेरा मलेथा।

कैसों छ भण्डारी तेरो मलेथा?

पालिंगा की बाड़ी मेरा मलेथा

लासण की क्यारी मेरा मलेथा

बांदू की लसक मेरा मलेथा

बैखू की ठसक मेरा मलेथा

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा।''

अर्थात्- भण्डारी! कैसा है तेरा मलेथा ? ये रुकमा! तू मेरे मलेथा गांव में आ जा! रुकमा! मेरे मलेथा में भैसों का खरक है। गोरु के गले में बंधी घंटियों की धमण्धार (खनखनाहट) है। बकरियों के झुण्ड हैं। भण्डारी तेरा मलेथा कैसा है। रुकमा! मेरा मलेथा देखने में रमणीक है। उसमें चलती नहर हैं। गांव के नीचे खेत है। मेरे मलेथा गांव के ऊपर पनघट है। भण्डारी! तेरा मेरा मलेथा कैसा है ? रुकमा! मेरे मलेथा गांव में लहसन की क्यारियां हैं। पालक का बाड़िया है। मेरे मलेथा में सुन्दरियों की लचक हैं, पुरुषों की शान हैं। रुकमा, तू मेरा मलेथा आ जा।

9. धार्मिक गीत- बिनसर गढ़वाल का सुप्रसिद्ध शिव मन्दिर है। इस मन्दिर पर आधारित धार्मिक गीत के बोले देखिए- इसमें देवी विन्सर टेकपद है-

विन्सर का डांडा देवी विन्सर।

ह्यूं कती आयूं च देवी विन्सर।

धुण्ड-धुण्डयों को ह्यूं च देवी विन्सर

त्येरी जातरा पूरी कलू विन्सर।

जांठी ट्एकी औंलू विन्सर

छाया रख्या माया देवी विन्सर

अर्थात् 'हे देवी! पहाड़ी पर विन्सर (महादेव) का मन्दिर है। हे देवी वहां बर्फ कितना गिरा है ? घुटनों तक बर्फ है। मैं तेरी यात्रा पूरी करूंगा विन्सर देवता। छड़ी टेककर आउंगा। उपनी छांव और प्यार रखना देवता। मैं तेरे दर्शन को आऊंगा विन्सर देवता' ।

आपकी जानकारी के लिए अब हम एक और धार्मिक नृत्यगीत प्रस्तुत है। जिसका टेकपद है- 'झमाकों'यह गीत नन्दा भगवती पर आधारित है-

''सतवन्ती माता झम्मा को, मैणावन्ती माताझम्मा को।

मैणा की पुतरी झम्मा को, बाई गंवारा झम्मा को,

गौरा का गणा झम्मा को, क्वे देश को राजा झम्मा को,

दक्षिण को राजा झम्मा को, तू दैवी न कारा झम्मा को

मैणावन्ती माता झम्मा को, बाई गंवारा झम्मा को,

गौरां का मंगणा झम्मा को, क्वे देशों राजा झम्मा को,

उत्तराखण्ड को राजा झम्मा को, तू देणी न कारा झम्मा को,

एक हाथ त्रिशूला झम्मा को, एक हाथ डमरु झम्मा को

शंकर भगवाना झम्मा को, बणीगी भगवान झम्मा को

अर्थात्- सतवन्ती माता मैणावती माता को प्रणाम (झम्मा को निरर्थक पद) केवल पद पूर्ति के लिए तथा ताल मिलाने में सहयोगी वाक्य है। मैणा की पुत्री गौरा, गौरा के गणों को प्रणाम। दक्षिण के राजा (आए है) तू फलदाई न होना। गौरा का विवाह प्रस्ताव लेकर आए हैं फलदाई न होना। उत्तराखण्ड के राजा आए हैं उस पर अनुकूल होना। कैलाश के राजा आए हैं उन पर अनुकूल होना। भगवान शंकर की बारात सज रही है। उनके एक हाथ में त्रिशूल और एक हाथ में डमरु है। शंकर भगवान को दाहिनी होना। गौरा शंकर की जय हो। बभूतधारी जोगी ने अपना विकट रुप छोड़ दिया है। जा बेटी गौरा फ्यूंली खिल गई हैं भगवान ने सुन्दर रुप बनाया है। बारात आ गई है झम्मा को अर्थात् आनन्द आ गया हैं।

चन्द्रामती की लोकगाथा में लोक संगीत के बोल इस प्रकार होते हैं-

नाच नाचों चन्द्रामती चंदन की चौकी,

कैसे नाचूं ? कैसे खेलू ? चंदन की चौकी।

ब्याली ल्यायों नाक नथुली कां धाले बुवारी

मै त गयो नन्दा का द्यूल भेटुंली चढायों। नाच नाचों चन्द्रामती

कैसे नाचूं ? कैसे खेलू ? चंदन की चौकी।

ब्याली ल्यायों सरि सिसफूल कां धाले बुवारी ?

मै त गयो नन्दा का द्यूल, भेटुंली चढ़ायों। नाच नाचों चन्द्रामती

कैसे नाचूं ? कैसे खेलू ? चंदन की चौकी।

ब्याली ल्यायों गात धाधरी का धाले बुवारी ?

मै त गयो नन्दा का द्यूल भेटुंली चढायों। नाच नाचों चन्द्रामती चंदन की चौकी।

अर्थात- चन्द्रामती चन्दन की चौकी में नाचों! मैं चन्दन की चौकी में कैसे नांचू कैसे खेलूं ? अरी बहू! कल ही तो नाक की नथ लाया था वह कहां डाला ? मैं तो नन्दा के देवालय गई थी, मैंने भेंट चढ़ा दी। मैं चन्दन की चौकी में कैसे नांचू ? अरी मैं नन्दा के मन्दिर में भेंट चढ़ा आई। चन्द्रामती! चन्दन की चौकी में नाच। अब मैं चन्दन की चौकी में कैसे करके नांचू ? मेरे पास धगुली नहीं है। अरी बहू कल ही तो धागुली लाई थी ? वह तो मैंने नन्दा जी के मन्दिर में चढ़ा दी है। अब मैं बिना (आभूषणों) के चन्दन की चौकी पर कैसे करके नांचू। हे चन्द्रामती! चन्दन की चौकी पर नाच ? इस गीत में स्त्री के सभी आभूषणों का वर्णन आता है।

10. झूल नगेलों- देवता (प्राचीन नागवंश के राजा रहे हैं) वे गढ़वाल में नाग देवता के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका लोकगाथा गीत देखिए-

झूल नगेलो आयो जसिलों देवता।

झूल नगेलो आयो रैती देंद जस,

झूल नगेलो आयो मुलक लगे घेउ,

झूल नगेलो आयो लसिया की धाती,

झूल नगेलो आयो बजीरा की गादी,

झूल नगेलो आयो तू मोतू का सिर,

झूल नगेलो आयो छै मैन का बालक,

झूल नगेलो आयो भौंकोर्यो का रुगाट,

झूल नगेलो आयो धाण्डयूं का धमणाट

झूल नगेलो आयो परचो बदौंद।

अर्थात- ''देवालय में नगेला देवता आया है- यशस्वी देवता। देवल में नगेला आया है, अपने भक्तों को यश देता है। देवालय में नगेला आया है देश भर में ख्याति हो गई है। लस्या की थाती में लजिश की देवभूमि में और मोतू के सिर में नगेला आया है। छः माह के बालक पर नगेला आया है। भौंकरियों की रुणआणट सुनकर, घंटों की घनघनाहट सुनकर देवालय में नगेला आया है। वह अपना परिचय देता है, जौं के चावल बनाता है, हरियाली उगाता है। देवालय में भैंस दूध देती है। क्वारे को ब्याह देता है। देवालय में नगेला (नाग देवता) आया है''।

इस प्रकार लोकगीत, गढ़वाली जनमानस की धार्मिकता, ओजस्विता, दानवीरता, कर्तव्यपरायणता, श्रृंगार-प्रेयता, प्रकृति प्रेम, विरह वेदना, और मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्त करने के साधन है। जो कि अनाम लोकगाथा गीतकारों की अद्भुत करामाती प्रतिभा से उपजे है और समाज में व्याप्त है तथा लोक के मनोरंजन, तथा लोक व्यवहार के शिक्षक बनकर एक सभ्य आस्थावान समाज करा निर्माण करने के लिए अपनी विशिष्टता के कारण अजर-अमर है। लेकिन परम्परा से श्रुत होने के कारण, तथा वर्तमान में नए-नए संगीत प्रचार और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से परिवर्तन होने के कगार पर पहुंच रहे हैं। क्योकि पाश्चात्य संगीत का प्रभाव इन्हें विनष्ट कर देगा। यहीं लोकगाथा गीतों के भविष्य पर प्रश्नचिह्न है।

## 10.5 सारांश

लोकगीत मन की रागात्मक प्रवृत्ति से उपजते हैं। इनमें मनुष्य और उसके समाज के हर्ष विषाद के छन्दबद्ध नमूनों के रुप में गीतधाराएं अनाम कवियों के कंठ स्वरों से निकलती हैं। जहां वे गीत हैं वहीं नृत्य भी है। ढोल वादक चैत के महीने में चैती गाते हैं। जिनमें विवाहिता स्त्री को पातीव्रत्य में रहने व अपने कुल की मर्यादा का आभास कराते हैं। ऋतु गीतों में खुदेड गीत, बसन्त ऋतु में गाये जाते हैं तथा चौमासे वर्षा ऋतु में। प्रणय गीतों में पति-पत्नी व प्रेमी-प्रेमिका के संयोग-वियोग के बिम्ब होते हैं। छोपती, तान्दी, थड्या, चौफुंले, झुमैलों, बाजूबन्द, झूड़े आदि चांचरी गीतों के अन्दर समाहित है। इन लोकगीतों की विशेषता एवं इनकी प्रवृत्तियां

भिन्न-भिन्न है। जिनमें काफी कुछ अन्तर भी मिलता है। लोगगीत और लोकगाथा गीत दोनों अलग-अलग प्रकार की शैली रुपों एवं वर्ण्य विषयों को लेकर चलते हैं।

इस इकाई का अच्छी प्रकार अध्ययन करने के बाद आप समझ गए होंगे कि -

1. लोकगीत किसे कहते हैं और उनकी विषय वस्तु में लोकतत्व कैसे समाया रहता है ?
2. गढ़वाली लोकगीतों का स्वरूप कैसा है ?
3. गढ़वाली लोकगीतों के पद्यात्मक साहित्य की विशेषताएं क्या हैं?
4. प्रमुख गढ़वाली लोकगीत कौन-कौन से हैं ?
5. लोकगीतों के कथानक और उनकी विभिन्न शैलीयों का क्या आशय है।
6. गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं तथा उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों कौन-कौन सी हैं।

## 10.6 शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| औजी (आवजी) | - | ढोल वादक |
| उदंकारी | - | पहाड़ की चोटियों पर अकस्मात दिखने वाला प्रकाश |
| चौंफुला | - | एक प्रकार की लोकगीत जिनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार फलों की प्राप्ति होती है। |
| झुमेलो | - | एक प्रकार की लोकगीत या लोकगीतों की अन्तिम कड़ी |
| पश्वा | - | गढ़वाल का एक देवता |
| धुंयाल | - | पूजा के समय उठने वाला धुआ अथवा पहाड़ की चोटियों पर प्रातः सूर्योदय के समय उठने वाला धुंआ |
| पंवाड़ा | - | गढ़वाल के वीर बहादुरों के गीत |
| पालसी | - | भेड़-बकरियों कर चरवाहा |
| पाखा | - | पहाड़ का एक भाग |
| भूम्याल | - | भूमि पाल, एक देवता विशेष |
| स्यूंसाठ | - | नदियों का स्वर्ग |
| हंसिया | - | रसिक |

## 10.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

प्र. 1 का उ.- संगीतात्मकता, जनभाषा का प्रयोग, मौखिक परम्परा, लिखित व अलिखित गेय काव्य

प्र. 2 का उ.- ''कनु छ भण्डारी तेरो मलेथा?

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा

मेरा मलेथा धांड्यो को धमणाट

मेरा मलेथा बाखर्यों को तादो।

कैसो छ भण्डारी तेरो मलेथा ?

देखेण को भलों मेरा मलेथा।

लगदी फूल मेरा मलेथा।

गौं मुड़े को सेरो मेरा मलेथा

गौं मथे को पंधारों मेरा मलेथा।

कैसों छ भण्डारी तेरो मलेथा?

पालिंगा की बाड़ी मेरा मलेथा

लासण की क्यारी मेरा मलेथा

बांदू की लसक मेरा मलेथा

बैखू की ठसक मेरा मलेथा

ऐ जाणू रुकमा मेरा मलेथा।''

प्र. 4 का उ.- लोकगाथा गीतों की चार प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-

1. सतीत्व रक्षा की प्रवृत्ति,
2. जन्म और सन्तान सम्बन्धी रुढ़ियां,

3. सुन्दरियों को जीतकर लाने की प्रवृत्ति,

4. भड़ों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन

प्र. 5 का उ.- झुमैलों को संस्कृत में जम्भालिका कहते हैं। उदाहरण-

''ऐगैन दादू झुमैलों, रितु बौडीक झुमैलो

बरा मैनों की झुमैलों, बारा बसुन्धरा झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों को रितु प्यारी झुमैलों

बारा ऋतु मा झुमैलों, बसंत ऋतु प्यारी झुमैलों"।

प्र. 8 का उ. - छोपती में संयोग-वियोग दोनों अवस्थाएं मिलती है। प्रेम गीतों के अन्तर्गत बाजूबन्द में भी छोपती के समान ही संवाद गीत होते है। छोपती चौंक में नृत्य के साथ समूह में गाई जाती है और बाजूबन्द दो स्त्री-पुरुषों के बीच निजता के साथ वनों के एकान्त में गाये जाते है। छोपती का एक उदाहरण प्रस्तुत है-

काखड़ की सींगी, मेरी भग्यानी हो,

रातू कु सुपिमा देखि, मेरी भग्यानी हो,

दिन आख्यूं रींगी, मेरी भग्यानी हो,

ढोल की लाकूडी़ मेरी भग्यानी हो,

तू इनी दिखेन्दी, मेरी भग्यानी हो

## 10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

7. धुंयाल- अबोध बन्धु बहुगुणा, गढ़वाली भाषा परिषद? देहरादून- संस्करण अगस्त 1983

## 10.5निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न-1 गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख विशेषताएं बताओ।

प्रश्न- 2 गढ़वाली लोकगीतों के विकास एवं उसकी प्रवृत्तियों पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

# इकाई14 गढ़वाली लोकगाथाएं- स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 गढ़वाली लोक गाथाओं का स्वरूप एवं साहित्य
11.3.1 गढ़वाली लोकगाथाओं का वर्गीकरण और गढ़वाली लोकगाथाएं
11.3.2गढ़वाली लोक गाथाओं की विशेषताएं
11.3.3मिथकों पर विश्वाश
11.3.4गढ़वाली लोकगाथाएं : कुछ अन्य प्रवृत्तियां
11.3.5 गढ़वाली लोक गाथा और पावड़ा
11.4 जागर : एक लोकगाथा गायन पद्धति
11.4.1 रणभूत तथा वार्ताएं
11.4.2 कृष्ण से सम्बन्धित जागर गाथाएं
11.4.3 चन्द्रावली की वार्ता
11.5 सारांश
11.6 अभ्यास प्रश्न
11.7 शब्दावली
11.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.11 निबन्धात्मक प्रश्न

## 11.1. प्रस्तावना

लोकगाथाएं हमारे लोक साहित्य की धरोहर हैं। जो हमारे इतिहास, पौराणिक मान्यताओं और विश्वासों तथा जीवन शैली का परिचय देती हैं। जुगल किशोर पटशाली के अनुसार, ''पूर्ववती सामाजिक संरचना, इतिहास मान्यताएं एवं मानसिकता को अपनी गठरी में बांधकर ये लोकगाथाएं हम तक पहुंचाती हैं। इन गाथाओं के मूल व उत्पत्ति के कारण जानने के लिए जब हम सुदूर अतीत की ओर झांकते हैं, तो हमारी बुद्धि व आँखें सृष्टि के प्रारम्भिक काल पर जाकर ही विराम लेती हैं''।लोकगाथा का दर्जा प्राप्त करने के लिए जिन प्रमुख बातों पर उन्हें खरा उतरना चाहिए वे निम्नलिखित हैं-

1. गाथा का काल 2. गाथा की विषय वस्तु 3. गाथा का लोक संगीत/लोक धुन 4. गाथानायक की समाज में पैंठ की गहराई 5. गाथा द्वारा श्रोताओं को दिए गए मानवीय मूल्य व समाज को दिया संदेश 6. गाथा द्वारा समाज अथवा लोकमानस में स्थापित किया गया महत्त्वपूर्ण आदर्श आदि,

लोकगाथा गायन भी जब जो चाहे जैसा करना चाहे इसकी छूट नहीं दी जाती है। लोकगाथा में हम किस महापुरुष की, किस योद्धा की, किस वीर की, किस देव तुल्य व्यक्ति की विरुदाबलि गाए इसका निर्णय भी लोक, सोच विचार कर करता है। इसके गायन के लिए एक निश्चित् नियम व प्रक्रिया में रहना अत्यावश्यक है। लोकगाथा गायन की पद्धति, उसके छन्द, लय-ताल, संवाद, प्रवचन, स्वरों को गाते समय उतार-चढ़ाव, वाद्य यन्त्र की धुन के साथ ताल-मेल, भाव और नाट्य की एकरुपता, नृत्य की संगतता पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

गाथाओं के गायन की अलग-अलग शैलियां प्रचलित हैं जो कि भाषा और वर्ण्यविषय के कारण निम्नवत् अभिहित की जाती है। जैसे- तमिलनाडू की हरिकथा 'कलाक्षेपम्', आन्ध्र प्रदेश की 'बुर्राकथा' महाराष्ट्र और राजस्थान के 'पवाड़े', उत्तर प्रदेश में 'आल्हा' गोपीचन्द और पूरनमल के गाथागीत, छत्तीसगढ़ की रामायण और महाभारत (तीजनबाई की पाण्डुवानी) महाभारत गाथा और पंजाब का 'हीर-रांझा' ये सभी अत्यधिक प्रिय लोक गाथाओं की शैली और वर्ण्य विषय की सामग्री हैं।

## 11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने से आप जान सकेंगे-

1. लोकगाथा किसे कहते हैं ?
2. लोकगाथाओं का प्रतिपाद्य विषय क्या होता है ?

3. लोकगाथाएं कितने प्रकार की होती हैं ? उनका वर्गीकरण क्या हैं ?

4. लोकगाथाओं की विशेषता क्या है ?

5. लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां कौन-कौन है ?

6. पवाड़ा, जागर, लोकवार्ता क्या हैं ? उसकी गायन पद्धति कैसी हैं ?

7. लोकगाथाओं में प्रमुख लोकगाथाएं कौन सी हैं ? उनका लोक साहित्य, 'गढ़वाली भाषा'में हिन्दी अनुवाद देखकर आप सरलता से गढ़वाली भाषा की मधुरता से परिचित हो सकेंगे तथा उसमें प्रयुक्त प्रतीक, बिम्ब, उपमान योजना जैसे काव्य तत्वों का भी आभास पा सकेंगे।

## 11.3 गढ़वाली लोकगाथाओं का स्वरूप एवं साहित्य

आंचलिकता के प्रभाव के कारण जो जिस अंचल की लोकगाथा होती हैं वह वहां की लोकधुन, लोक संस्कृति, लोक विश्वास, लोक रुढ़ियां, लोकोत्सव और लोकभाषा का ठाठ लिए होती हैं। लोकगाथाओं में क्षेत्र विशेष का भूगोल इतिहास और मान्यताएं भी जीवित रहती हैं। वे आँचलिकता को ओढ़ कर चलती है। लोकगाथाएं अपने संगीत तत्व को लोकवाद्यों, लोकगाथा गायकों और लोकमानस की श्रद्धान्वित भाव तरंगों से सरसब्ज बनाए रखती हैं। लोकगाथा गायन को लोकगाथाकार सृजता है और कभी लोकगाथा की धुनें, लोकगाथा गायन करने वाले गायक स्वयं भी तैयार करते हैं। अतः दोनों में अटूट सम्बन्ध बना रहता है। कोई साहित्यिक रचना तो लेखक की मौलिक रचना होती हैं। लेकिन लोकगाथाएं लोक की होती हैं लोक रचित रहती हैं। अतः उन पर व्यक्ति विशेष स्वयं रचयिता होने का दावा नहीं कर सकता है।

लोकगाथाओं में मूल वर्ण्य विषय एक होने पर भी उनकी गायन पद्धति, लोकधुनें, शैली, प्रस्तुतिकरण भिन्न-भिन्न हो सकते है। श्रोताओं की जो शैली, जो धुन जो पद्धति पसन्द आती हैं, वहीं भावी पीढ़ी के पास धरोहर के रूप में पहुंचा दी जाती हैं। डा. अवस्थी के अनुसार- ''लोकगाथा लोकनाट्य, लोकगाथाएं मूल में तो एक ही है। मात्र शाखाएं अलग-अलग है। जो लोकगाथाएं अपने लोकतत्व, लोकसंगीत और पद्धति से निखरकर समाज में लोकप्रिय होती हैं, वे जीवित रहती है''। उत्तराखण्ड के विविध अंचलों में समयानुसार आज भी जो गाथाएं प्रचलन में है वे निम्नलिखित है- 1. अजुबा बफौल की गाथा 2. अजीत बौर की गाथा 3. ऐड़ी की गाथा 4. कत्यूरों की गाथा 5. कलबिष्ट की गाथा 6. उषा-अनिरुद्ध की गाथा 7. कालू भण्डारी की गाथा, कमुली रौतेली की गाथा 8. कृष्ण-रुक्मिणी गाथा 9. कालसिण गाथा 10. कृष्णावतार (भारत गाथा) 11. गोरिधना की गाथा 12. गौरा-माहेश्वर गाथा 13. गंगानाथ की

गाथा 15. गददेवी की गाथा 16. गुरु गोरखनाथ की गाथा 21. गढ़ू सुमरियाल कर गाथा 23. गोपीचन्द की गाथा 23. छुरमल की गाथा 20. जियाराणी की गाथा 21. जयमाला बौहरी की गाथा 23. जगदेव पंवार की गाथा 23. जीतू बगड़वाल की गाथा 24. तीलू रौतेली की गाथा 25. चौमू देवता की गाथा 26. झांकर सैम की गाथा 27. दुधा कंवल की गाथा 28. अनारी नैद की गाथा 29. धामयों-विरमद्यो की गाथा 30. नागमिल-भागमिल की गाथा 31. नन्दादेवी की गाथा 32.नागवंशी गाथाएं 33. नारसिंह की गाथा 34. नौलिंग देव की गाथा 35. निरावली जैंता की गाथा 36. पुरुखपन्त की गाथा 37. परियों की गाथा 38. पाण्डव गाथाएं 39. ज्यूंली की गाथा 40. बरमी कंवल कर गाथा 41. बफौल गाथा 42. विरमूसोन कर गाथा 43. विषभाट की गाथा 44. बाल गोरिया कर गाथा 45. बालोचन की गाथा 46. बाजुरी चैत की गाथा 47. भनरिया की गाथा 48. भोलानाथ की गाथा 49. भारतीचन्द की गाथा 50. भीमा कठैत की गाथा 51. भुम्याल गाथा 52. भर्तृहरि गाथा 53. भैरों गाथा 54. माधो सिंह (मलेथा) की गाथा 55. मोतियां सोन की गाथा 56. रणू रौत की गाथा 57. राजुला-मालूसाही की गाथा 58. रुक्मिणी चन्द्रावली गाथा 59. रामी-बौराणी की गाथा 60. रतूमहर-भगूमहर गाथा 61. रामअवतार गाथा 62. सकाराम कार्की की गाथा 63. स्यूंरा-बैरा बैक की गाथा 64. सिदुवा-विदुवा रमौल की गाथा 65. सूर्जकंवल की गाथा 66. सरुगंगा लली की गाथा 67. सम्याल हीत की गाथा 68. सैम की गाथा 69. शिवअवतार की गाथा 70. स्यूरांज-म्यूंराज बौर की गाथा 71. हंसकुंवरिगाथा 72. हरु की गाथा 73. हंसा-हिण्डवाण की गाथा आदि। श्री पेटशाली के अनुसार, यह ज्ञातव्य है कि प्राचीन काल में प्रचलित गायन परम्परा का मध्ययुग में बहुत विकास हुआ। दसवीं शताब्दी तक नाट्य कलकारों का एक निश्चित् वर्ग चारणोंका था। ये चारण प्राचीन सूत्रों और कुशीलवों की परम्परा के माने जाते है। भारत के मध्यकाल में देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा था। ये राजा लोग सदा छोटी छोटी लड़ाइयों में लगे रहते थे। उनके दरबार में चारण (भाट) रहा करते थे जो कि इन राजाओं की युद्धवीरता, दानवीरता की विरुदावली बखान करते थे। आगे राजदरबार से यह परम्परा बाहर निकली और स्थानीय चौबारों, मेले-उत्सवों, शहर-गांवों के खुले मैदानों में प्रस्तुत की जाने लगी। इन्हीं चारणों के कारण रामायण-महाभारत की गाथा सामान्य जनता के बीच प्रचलन में आई और बाद में महाकाव्यों की विषय-वस्तु भी बनी। लोकगाथाएं निम्नवत् विभाजित की जा सकती हैं-

1. प्रेम-गाथाएं 2. वीर गाथाएं 3. पौराणिक गाथाएं 4. ऐतिहासिक गाथाएं 5. स्थानीय देन गाथाएं। यह वर्गीकरण श्री जुगल किशोर पेटशाली का है। हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', डा. गोविन्द चातक, मोहनलाल बाबुलकर और तारादत्त गैरोला ने भी अपनी-अपनी तरह से लोक गाथाओं के वर्गीकरण किए है, यह वर्गीकरण आगे प्रस्तुत किए जायेंगे। प्रसिद्ध प्रेम गाथाओं में ''राजुला मालूसाही''ज्यादा लोकप्रिय है। इस पर बहुत काम हुआ है। यहां तक कि विदेशी व्यक्तियों (कोनाई माइजनर) ने भी इसका ध्वन्यालेखन का कार्य किया जिसके परिणाम स्वरुप यह 'गाथा गायन शैली'लोक धुन थोड़ा बहुत बच पाई है। आज संरक्षण के अभाव में अनेक लोकगाथाएं विस्मृति के गर्त में जा रही है। अतः उनका समय पर बचाव जरुरी है। इसके लिए आधुनिक

तकनीकि संचार माध्यम हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते है। अतः आडियो-विडियों की मदद लेकर आधुनिक नए वैज्ञानिक उपकरणों से इसके संग्रह और ध्वन्यकंन, गाथागायक शैली का संरक्षण किया जा सकता है। लोकगाथाओं में लोक का तत्कालीन परिवेश और इतिहास अपनी मौलिकता के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए, उसे नए वाद्यों और ध्वनियों से देने से वह अपनी मौलिकता खो देगा।

लोकधुनों, लोकविश्वासों और लोक पद्धति का, लोकगाथाओं के गायन-वादन औ संवाद प्रवचन में सदैव ध्यान रखना चाहिए। वर्तमान समय में गाथागायक उसे अपनी दृष्टि से तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे है। इससे उनके मौलिक स्वरुप पर खरोंच आनी स्वाभाविक है। अतः बिना परिवर्तन के ज्यों का त्यों इन गाथाओं का गायन, वादन एवं अभिलेखन किया जाना चाहिए।

### 11.3.1 लोकगाथाओं का वर्गीकरण और गढ़वाली लोकगाथाएं-

लोक में प्रचलित गाथाएं 'लोकगाथा'कहलाती है। लोकगाथाओं को विद्वनों ने समुदायवाद, व्यक्तिवाद, जातिवाद, चारणवाद और व्यक्तिहीन व्यक्तिवाद में वर्गीकृत किया है। इन विद्वानों के आधार पर लोकगाथाओं का निर्माण व्यक्ति समाज एक विशिष्ट कलाकार, विविध जातियों, चारणों और भाटों द्वारा किया गया है। लेकिन आगे चलकर व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर ये गाथाएं जन साधारण की सम्पत्ति बन जाती है। प्रो. कीट्ज ने लोकगाथाओं का जो वर्गीकरण किया है वह निम्नवत् है-

1. चारण गाथाएं- चारणों द्वारा गाए जाने के कारण इनकों चारण गाथा कहते हैं।
2. परम्परागत गाथाएं- परम्परागत गाथाएं चिरकाल से चली आ रही है। इनका प्रभाव आज तक चिरस्थाई हैं।

डा. गूचर ने लोकगाथाओं के वर्गीकरण में निम्नवत् सोपान निर्धारित किए हैं-

1. प्राचीन गाथाएं- ये गाथाएं आकाश, पृथ्वी और ऋतुओं से सम्बन्धित है। इनका आधार वैदिक साहित्य से लेकर लोक साहित्य तक सर्वत्र रहा है। पृथ्वीसूक्त, और उषासूक्त में इन पौराणिक गाथाओं की निमित्ति देखी जा सकती है।
2. कौटुम्बिक गाथाएं- इनका सम्बन्ध कुटुम्ब से है।
3. आलौकिक गाथाएं- इन गाथाओं के अन्तर्गत जादू-टोना, परी-अप्सरा और अन्ध विश्वास समाहित हैं।

4. पौराणिक गाथाएं- प्राचीन आख्यान, जो प्राचीन भारतीय साहित्य के पुराण-वेद और उपनिषद् साहित्य में है उनसे सम्बन्धित गाथाएं पौराणिक गाथाएं है। जागर के अन्तर्गत देवपूजा, स्तुति और देव विरुदावलियां इसके अन्तर्गत आती है।

5. सीमान्त गाथाएं- सीमा प्रान्त स्थित लोगों की अभिकल्पना और सीमान्त युद्ध-संस्कृति, लोकपरम्परा पर आधारित गाथा को सीमान्त गाथाओं के अन्तर्गत परिगणित किया गया है।

6. नायक गाथाएं- ये गाथाएं व्यक्ति विशेष के चरित्र से अनुप्राणित होकर सृजी जाती है जैसे- सुल्ताना डाकू, मान सिंह, जोरावर सिंह, मोरो पिमन, राबिन हुड आदि नायकों की जीवन से सम्बन्धित गाथा नायक गाथा के अन्तर्गत आती है।

डा. कृष्णदेव उपाध्याय कृत वर्गीकरण-

डा. कृष्णदेव उपाध्याय ने गाथाओं को आकार तथा विषय के अनुसार विभाजित किया है। उन्होंने लघु तथा वृहद विषय के अनुसार इन्हें तीन भागों में विभाजित किया गया है-

1. प्रेमकथा गाथा

2. वीरकथात्मक गाथा

3. रोमांचक कथात्मक गाथा

डा. सत्येन्द्र का वर्गीकरण-

1. विश्व निर्माण की व्याख्या करने वाली लोकगाथाएं।

2. प्रकृति के इतिहास की व्याख्या करने वाली लोकगाथाएं तथा

3. मानवीय सभ्यता की व्याख्या करने वाली लोकगाथाएं।

लोकगाथाओं का यह वर्गीकरण समग्रता को लेकर किया गया है यद्यपि यह देश-काल के अनुसार लोक और प्रादेशिक भाषाओं में व्यवहृत एवं प्रचलित भी हुआ है तथापि लोकगाथाओं के अन्य विभेद भी किए जा सकते हैं।

गढ़वाली लोकगाथाओं को डॉ गोविन्द चातक ने निम्नवत विभाजित किया है-

1. जागर वार्ता- इसके अन्तर्गत उन्होंने सभी धार्मिक लोकगाथाओं को अन्तर्निहित कर दिया है।

2. पवाड़ा- ये गढ़वाल में प्रचलित प्रबन्धात्मक वीर गीत है।

3. चैती- प्रेमाख्यान गीत।

डॉ गोविन्द चातक को आधार मानकर डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने लोकगाथाओं को दो भागों में बांटा है-

**1. लौकिक गाथाएं 2. पौराणिक गाथाएं**

1. लौकिक गाथाएं- इसके अन्तर्गत पवाड़ा-वीर गाथाएं और प्रेमगाथाएं सभी प्रकार के प्रबन्ध गीत है।

2. पौराणिक गाथाएं- इसके अन्तर्गत डॉ भट्ट ने कृष्ण लीलाओं सम्बन्धी स्थानीय देवताओं और पांडव सम्बन्धी गाथाओं को लिया है।

मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोकगाथाओं को मुख्यतः दो भागों में बांटा है-

1. जागर वार्ता- इनमें पौराणिक देवता, महाभारत के पात्र (पाण्डवों) तथा स्थानीय देवताओं की उपासनात्मक वीर गाथाएं है तथा

2. लोकगाथाएं - ऐतिहासिक व अनैतिहासिक वीर पुरुषों एवं स्थानीय पुरुषों के आख्यानपुनश्च बाबुलकर जी ने देवगाथा और लोकगाथा के निम्न विभाजन किए है।

1. देवगाथाएं (जागरवार्ता) के अन्तर्गत परिगणित की जाने वाली गाथाएं

   (क) कृष्ण चरित्र, रुक्मिणी-चन्द्रावाली, शिव-पार्वती, बैकुण्ठ चर्तुदशी की गाथाएं।

   (ख) निरंकार, गरुड़ासन, भैरों, नरसिंह, हन्त्या, आछरी, देवी विषयक गाथाएं।

   (ग) पाण्डव, भीम, नागलोक कथा, युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, द्रोपदी, और कुन्ती अर्जुन गाथा

2. लोकगाथाएं-

(क) ऐतिहासिक पुरुषों पर आधारित लोकगाथाएं।

(ख) ऐतिहासिक, अनैतिहासिक, एवं स्थानीय पुरुष सम्बन्धी।

(ग) वीरगाथाएं।

बाबुलकर जी ने देवगाथाओं को आकार एवं गायन पद्धति के आधार पर निम्नवत वर्गीकृत किया है-

**देवगाथाएं**

(क)राज पुरुषों सम्बन्धी गाथाएं

1. अजैपाल
2. राजा मान साह
3. मालू साही
4. ज्गदेव
5. राजा प्रीतम सिंह

(ख)ऐतिहासिक, अनैतिहासिक स्थानीय पुरुषों की गाथाएं

1. कालू भण्डारी
2. कफ्फू चौहान
3. गढ़ू सुम्याल
4. सुरजू कुंवर
5. बागा रौत
6. काली हरपाल
7. राजुला-मालूसाही
8. भाग देऊ
9. बरमी कौल
10. सोनू-विरभू
11. जीतू बगड़वाल
12. हंसा कुंवर
13. गंगू रमोला
14. विध्नी विजयपाल
15. रणू रैत
16. ब्रह्म देव
17. सुमेरु रौतेला
18. धाम देव
19. भानू भौंपेला
20. आशा रौत
21. हंसा-हिंडवाण

(ग) वीरगाथाएं

1. नौरंगी राजुला
2. पत्थर माला
3. तीलू रौतेली

4. रौतेली राणीपुर्हा
5. ध्यान माला
6. जोतर माला
7. चन्द्रावली
8. सुरमा
9. सरु कुमैण
10. बरुणा (भरणा)
11. अमरावती

निष्कर्षतः डॉ गोविन्द चातक, डा. शैलेश, मोहनलाल बाबुलकर के वर्गीकरण में प्रायः सभी प्रचलित और उपलब्ध गढ़वाली लोकगाथाएं आ गई हैं । आपको यह ध्यान रखना है कि गढ़वाली लोकगाथाओं को 'पंवाड़ा'कहा जाता है। ये पद्यरुप में गाए जाने वाले गीत होते है। पवाड़ों में राजाओं, वीरभड़ों, वीरांगणाओं की गाथाएं आती हैं। गढ़वाल की वीर गाथाओं में सन् 688 से सन् 1800 तक के कतिपय गढ़देशीय राजपुरुष, गढ़वाली वीरांगणाएं एवं वीरपुरुष वीरगाथाओं के अन्तर्गत स्थान पाए है। मोहनलाल बाबुलकर के अनुसार ये वीरगाथा चरित्र गीत वीरपुरुषों और वीरांगणाओं की विरुदावलिया है। जो कि तेहरवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक रचे गए हैं।

इन लोक गाथाओं में अद्भुत पराक्रम, शक्ति, श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और प्रेम की यातनाएं, त्याग, तपस्या, बल-बुद्धि कौशल का प्रदर्शन, राग-द्वेष, उलाहने और उलाहनों के लिए उत्सर्ग की भावना, युवा-युवतियों को पाने की होड़, खनखनाती तलवारों का वीभत्स नाच, मुण्डों के चौरे, खून के घट्ट, यौवनावस्था का एन्माद, अन्न और धन का उन्माद, शराब और वैश्याओं की रंगशालाओं की झांकिया, आलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन और लोकरीतियों एवं नीति का सत्य शिवं सुन्दरम सभी रुप इन्हीं गाथाओं में मिलता है। ये लम्बी ढौल (तर्ज) पर ऊंचे स्वर में गाए जाने वाली गाथाएं है। इन गीत गाथाओं में चरित्र वर्णन बोधगम्य भाषा में है तथ्ज्ञा स्थान विशेष की विशेषताओं का इनमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

### 11.3.2 गढ़वाली लोकगाथाओं की विशेषताएं

गढ़वाली लोकगाथाओं की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्नवत् हैं-

1. अज्ञात रचयिता- गढ़वाली लोकगाथाओं के रचियता कौन है इसका पता नहीं लेता है। रचयिता का अज्ञात रहना भी इन गाथाओं की एक प्रभूत विशेषता है।
2. मूलपाठ का अभाव-गढ़वाली लोकगाथाएं विविध मूलक है अर्थात एक ही लोकगाथा विविध रुपों में उपलब्ध है। इनका कोइ एक प्रमाणिक मूलपाठ उपलब्ध नहीं है।

3. मौखिक परम्परा- गढ़वाली लोकगाथाएं परम्परा से मौचिाक रुपों में चली आ रही है। इनमें कतिपय अब भी अलिखित या अप्रकाशित रुप में ही अस्तित्व में है। तथापि दो दशक से बहुत सा लोकगाथा साहित्य संकलित और प्रकाशित होता जा रहा है।
4. स्थानीय प्रभाव- इन गाथाओं पर स्थान विशेष की परिस्थितियों का प्रबल प्रभाव मिलता है। इसके कारण गाथाओं में पाठान्तर है।
5. लेकसंगीत और नृत्य की एक रुपता- लोकसंगीत और नृत्य इन लोकगाथाओं की विशिष्टता है। इनमें प्रायः संगीत तत्व और नृत्य एक जैसा मिलता है।
6. साधारण, सरल और प्रभावोत्पादक शैली- इनकी प्रस्तुति की शैली सरल, अटपटी, भोजपूण और प्रभावोत्पादक है।
7. व्यवहारिक भाषा- इनकी भाषा सरल और लोकमुंह लगी होती है। जो कि स्थानीय भाषा के प्रभाव को द्योतित करती है।
8. निर्देशन का अभाव- इनमें निर्देशन का अभाव है। उपदेशात्मक नहीं है।
9. लम्बा कथानक और विविध कथाओं का चयन- गढ़वाली लोकगाथाओं के कथानक लम्बे और अनेक उपगाथाओं को लिए हुए है। जिन्हें प्रासंगिक गाथा कहा जा सकता है लेकिन मुख्य (अधिकारिक गाथा) अन्त तक चलती रहती है।
10. मोहनलाल बाबुलकर ने इन गाथाओं के लोकगायकों अथवा लेखकों की यशलिप्सा से दूर बताया है। उनका कार्य, उद्देश्य केवल जनता का लोक रंजन करना है। यह मूलतः लोक के लिए लिखा लोक काव्य है।
11. अलौकिक शक्ति वाली अप्सराओं की सृष्टि- इनमें अपनी अलौकिक शक्ति और सम्मोहन, रुपलावण्य से अप्सराएं (आंछरिया) जगत को मोहित करती दिखती है। वे सुन्दर पुरुष पर आसक्त होकर उसे हरण भी कर लेती है। स्त्रियों पर भी उनका आवेश चलता है। लेकिन कई बार ये अप्सराएं लोकगाथा गायकों की मदद करती भी दिखती है।
12. अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन- इन लोकगाथाओं के वर्णन प्रायः अतिशयोक्ति मंडित है। विशेष करके नायिकाओं के सौन्दर्य वर्णन में तथा नायकों के पराक्रम (पौरुष) और देह सौष्ठव का वर्णन इनमें अतिरंजनापूर्ण है जो कि अस्वाभाविक लगता है।
13. इष्ट देव का सहायक होना- सभी वीरगाथाओं में इष्ट देव नायकों और नायिकाओं की सहायता करते है। उनका स्मरण करके वे अलौकिक कार्य कर जाते है। अनहोनी को होनी में बदल देते है।
14. गुरु तथा मां द्वारा समझाया जाना- इन लोकगाथाओं के पात्रों को उनके गुरु या माता द्वारा उपदेश दिया जाता है। अपनी सौगन्ध दी जाती है। उन्हें मार्ग सुझाया जाता है। कई गाथाओं में नायक-नायिकाओं को टोका भी गया है। गुरु द्वारा रोका जाना और विपत्ति से उबरने में सहायक होना भी वर्णित है।

15. स्थानों के वर्णन में अनियमितताएं- यात्राक्रम में स्थानों के नाम परस्पर विरोधी है तथा देश काल और भूगोल प्रायः अस्पष्ट और भ्रान्ति मूलक मिलता है। रण यात्रा का क्रम उल्टा-पुल्टा है। अतः ये गाथाएं ऐतिहासिक विसंगता भी उत्पन्न करती हैं।
16. टेकपदों की पुनरावृत्ति- गेय होने के कारण इन वीर गाथाओं में हर दूसरे पद के बाद, पहला पद दुहराना पड़ता है।
17. प्रलाप व प्रवाद की प्रवृत्ति- ये गाथाएं प्रायः प्रवाद-प्रलाप की स्थिति में गाथागायकों के द्वारा गाई जाती है। जिनमें चिल्लाने की प्रवृत्ति अधिक दिखती है।
18. लोक विश्वासों का अमिट प्रभाव- इन गाथाओं में स्थानीय रीति-रिवाज, नीति और लोकविश्वासों की अमिट छाप मिलती है। जो उनके जीवन का लोकतत्व है।
19. ऐतिहासिक पुरुष- इन गाथाओं में राजपुरुषों के चरित्र है तथा मल्ल और वीरपुरुषों (भड़ों) का अतिशयोक्तिपूर्ण अतिरंजित वर्णन मिलता है।
20. स्त्री पात्रों के प्रेम की प्रधनता- युवक-युवतियों के प्रेम को पाने के लिए बलवती होड़ दिखाते है। नायकों कर शक्ति उनकी वीरता, देह सौष्ठव पर नारियां (युवतियां) आकर्षित दिखाई जाती है, यहां प्रेम की मुग्धावस्था कर वर्णन रहता है।
21. सशक्त स्त्री पात्र- सभी लोकगाथाओं में सशक्त चरित्रावली स्त्री ही नायिका के रुप में वर्णित रहती है। एसमें वीरत्व, साहस, और स्त्रीजनोचित प्रेम मार्धुय का भी अद्भुत सामंजस्य मिलता है। ये वीरांगणाएं या साहसी प्रेमी महिलाएं लोकगाथाओं की नायिका होती है।

निष्कर्षतः गढ़वाल लोकगाथाओं में लोकतत्व की प्रधानता रहती है। सावर की विद्या, बोक्साडी जाप, पंजाबी जुगटी, हाथताल छुरी, खुरासानी चीरा, स्फटिक मुंदरा, नौपुरी को बांस, पांसा, अमृत की तुम्बी, कानूं को मंतर, है सदा ज्यूंदाल, काली को जाप, बागभरी आसन आदि तांत्रिक और मांत्रिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले वीरगाथा के नायक, उनके गुरु तथा सहयोगी नायिकाएं एक विचित्र सम्मोहन तथा कीमियागीरी (कौतुक) की सृष्टि करते है। वीरगाथा नायकों का चरित्र नायिक निरुपण और युद्ध कौशल तथा दृश्य बिम्ब, एकानेक वीरगाथाकालीन प्रबन्ध काव्यों की पृष्ठभूमि सी तैयार करते है।

सम्भवतः मध्यकाल की स्थिति का जब कि मुगल आक्रमण जोरों पर थे, और उनके बाद राजस्थानी भड़ों की युद्धवीरता, श्रृंगार प्रियता जो कि पद्मावत आदि में वर्णित है। या रासो काव्यों में विद्यमान है उसका प्रभाव भी गढ़वाली वीरगाथा के अज्ञान लेखकों पर पड़ा है। राजुला मालूसाही की गाथा, पद्मावत महाकाव्य की इतिहास गाथा से कम रोचक नहीं है। ये गढ़वाली लोकगाथाएं कल्पना और इतिहास तत्व को एक साथ लेकर सृजी गई है। इनका 'रसात्मक पक्ष' तथा संगीत तत्व प्रबल आवेगमय है। 'फिंतासी' भी यहीं कही-कही अपना रंग दिखाती है। संक्षेप में लोकतत्व के साथ इतिहास गाथा का समेकित रुप पाठकों को इन लोकगाथाओं को पढ़ने और सुनने तथा इन पर चिन्तन-मनन करने के लिए उत्साहित करता है।

### 11.3.3मिथकों पर विश्वास-

गढ़वाली लोकगाथाओं की एक प्रवृत्ति मिथकों पर विश्वास भी है। जैसे- सृष्टि उत्पत्ति के विषय में गढ़वाली लोकगाथाओं में 'निरंकार' और 'सोनी गरुड़' की प्रख्यात गाथा लोक प्रसिद्ध है। इस गाथा में निरंकार से सोनी गरुड़ की उत्पत्ति की बात बताई गई है। सब ही शिव को भी सृष्टि की उत्पत्ति का श्रेय दिया गया है। गढ़वाल में निरंकार के गीतों में यह श्रेय गुसांई को दिया गया है। गुसांई शब्द गढ़वाल में नाथपंथी जोगियों के लिए प्रयुक्त होता है। सृष्टि की उत्पत्ति सम्बन्धी जिन गाथाओं में जिस सृष्टि की बात की गई है उसके गीज वेदों में हिरण्यगर्भ अंड की अवधारणा में निहित है।शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में भी हिरण्य अंड की चर्चा मिलती है। 'छान्दोग्य उपनिषद्'में भी ''अंडे कपाले रजत च सुपर्ण चामवत यद्यद् जात एयं पृथिनी यत् सुवर्ण सा द्यौ"के रुप में अंड से ब्राह्माण्ड की उत्पत्ति मानी गई है। लिंड्ग पुराण और मार्कण्डेय पुराण के अनुसार-पुरुष और प्रकृति के सम्मिलन का पूर्ण रुप अंड ही है। ब्रह्म या चैतन्य पुरुष ही अंड के रुप में समस्त प्राणियों का आदिकर्ता है। अब आप पुराण कथा और गढ़वाली गाथा में सृष्टि उत्पत्ति कथा का अन्तर देखों। गढ़वाली लोकगाथाओं (वार्ताओं) में सृष्टि उत्पत्ति में गरुड़ और गरुड़ी को माध्यम बनाया गया है। इसके लिए जागर वार्ता में 'कद्रु और विनता' वाली गाथा गाई जाती है जो कि गरुड़ और नागों में हुए संघर्ष की झांकी प्रस्तुत करती है। गरुड़ा शक्तिशाली थे अन्त में वें विजयी हुए और विष्णु के वाहन बने। समुद्र मंथन से निकले अमृत कुम्भ को देवता और राक्षसों की सुरक्षा से उठाकर भागने वाले महापराक्रमी गरुड़ ही थे। गाथा में गरुड़ के रोने से उसके आँसू गरुड़ी पी जाती है और उसके गर्भठहर जाता है। जब प्रसव का समय आता है तब गरुड़ के पंखों के उपर गरुड़ी अपना अंड प्रसव कर देती है लेकिन उसके पंखों से नीचे लुढ़ककर फूट जाता है जिससे समुद्रों सहित पृथ्वी और आकाश की उत्पत्ति हो जाती है। आपकी जानकारी के लिए गढ़वाली में लिखित यह सृष्टि उत्पत्ति गाथा जागर लोकवार्ता में इस प्रकार है, जिसका इस गाथा में अन्त में हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। जिससे आप गाथा को समझ सकें-

हे भगवान, कद्रु का नाग ह्वेना, विनता का गरुड़!

कद्रू-विनता दुई होली सौत्

सौतिया डाह बल कनी हांदी

क्या-क्या नी सोचौंदी क्या-क्या नी करौंदी ?

### 11.3.4 गढ़वाली लोकगाथाएं कुछ अन्य प्रवृत्तियां

इन लोकगाथाओं का अध्ययन करने से गढ़वाली लोकमानस की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों का पता चलता है, कि यथार्थ जीवन से संवद्ध होने पर भी इनमें अमिानव और अतिप्राकृत तत्वों की भरमार है। जो कि तत्कालीन लोक में प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों और

कथानक कर रुढ़ि पर निर्भर करता है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरुप गढ़वाली पवाड़ों में देवताओं, अप्सराओं, पशुओं तथा विभिन्न क्रिया व्यापारों के प्रति अति प्राकृत धारणाएं मिलती है। जिसमें पिता की संतान नहीं होती वह देवताओं की कृपा से संतान पाता है। वीर का पुत्र वीर ही होता है। ''जिसके पिता ने तलवार मारी है उसका पुत्र भी तलवार मारेगा'' यह लोकविश्वास इन गाथाओं में चरम पर है, भड़ों की जीवन युद्धों में बीतता है। ये राजा के आदेश का पालन करते दिखते है। भड़ और उसकी सेना दोनों एक साथ मिलकर शत्रु पर टूटते है। भड़ की मां और पत्नी को अपने महल या भड़ के युद्ध में घायल होने, मारे जाने एवं बन्दी बनाए जाने वाले अनिष्ट का पूर्व ही भान हो जाता है। मां के स्तनों से दूध बहने लगता है, पत्नी को अशुभ स्वप्न होता है या संकेत मिलते है। सतीत्व पर जोर मिलता है। सतीत्व रक्षा की वृत्ति पंवाड़ो में रुढ़ि से आई है।कालू भण्डारी के पंवाड़ें में युद्ध में जाते हुए पुत्र आनी माता से पूछता है कि मां सच-सच बता कि मैं अपने पिता की ही पुत्र हूं। तभी युद्ध में जाउंगा। 'दो की जाई और एक की जाई होना'अर्थात एक ही व्यक्ति की पति के रुप में स्वीकारने वाली 'दो पुत्रों की माता' होना सती स्त्री का लक्षण माना जाता था। अपने सत (सतीत्व) का स्मरण कराकर माताएं अपने पुत्रों को युद्ध में भेजती थी। उदहारणार्थ- विरमा डोटियाली अपने पिता को पुत्री होने को विजय से जोड़ती है, वह कहती है 'यदि हम सातों बहिने आपकी पुत्री होगी तो हमें युद्ध में विजय मिलेगी। इन बातों से यह संकेत मिलता है कि जारज सन्तान युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होगी। वीर माताएं अपने सत के कारण अपने पुत्रों की अभीष्ट प्राप्ति (इच्छा सिद्धि) में सहायक होती थी। गढ़ू सुमरियाल की वीरगाथा में उसकी माता इसी प्रकार उसकी सहायक होती है। माताओं के साथ गाथाओं की एक और प्रवृत्ति यह भी है कि पत्नी अपने सत (पतिव्रत्य) के बल पर मृत पति को जीवित करती हई दिखाई गई है। इन गाथाओं में असम्भव की सिद्धि के लिए सत्य को ललकारा गया है। सत्य ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्रकट होकर असम्भव को सम्भव बनाकर चमत्कृत कर डालता है। कभी-कभी इष्ट देवी स्वप्न में आकर बाधाएं दूर करती है और प्रेमी वीर पुरुष अपनी प्रमिका की डोली लेकर सारी बाधाएं पार करके अपने घर लौटते हैं,स्नान कराते हुए को शत्रु या शत्रु का सिपाही उन्हें धोखे से मार डालता है। लोदी रिखोला, कालू भण्डारी हिंडवाण आदि के साथ ऐसा ही धोखा होता है। ऐसी स्थिति में स्त्री सती हो जाती है। किसी पवाड़े में स्त्री पति और प्रेमी को दाहिनी और बाईं जांघ पर रुख कर उनके साथ सती हो जाती है। किन्तु जहां डोली घर सकुशल पहुंच जाती है वहां स्त्री (प्रेमिका) को दोहद की इच्छा होती है। फलतः पति शिकार के लिए जंगल में जाता है और मारा जाता है। षडयन्त्र प्रायः यभी पवाड़ों में मिलता है किन्तु सतीत्व की रक्षा वर्णन प्रायः पवाड़ों में काव्यमय ढंग से किया गया मिलता है। इस सौन्दर्य वर्णन में सुन्दरियों के लिए चुन-चुनकर उपमान संजोए गए है। ध्यानमाला, शोभनी, सरुकुमैण, जोगमाला सब के अद्भुत रुप सौन्दर्य का वर्णन, उनके नाक, मुंह, आंख, कमर आदि को लेकर भुजाएं और बलिष्ठ शरीर को लेकर किया मिलता है। युद्धस्थल पर उनकी वीरता का वर्णन मुहावरों और लोकोक्तियों तथा लक्षणा शब्द शक्ति के माध्यम से किया हुआ मिलता है जैसे- उन्होंने शत्रुओं को कचालू सा काट डाला। मुंडों से चबूतरे खड़े कर दिए, लहू के घराट चला दिए। वहां उन्होंने भांग बोना शुरु कर दिया।

लोकगाथा में वीर मल्ल सा भड़ ऐसा चमत्कार व पराक्रम अपनी इष्ट देवी झाली माली, ज्वाल्पा, कैलापीर आदि की कृपा से करते वर्णित किए गए है। भड़ों पर शिव-पार्वती की कृपा का भी वर्णन भी कुछ पवाड़ों में मिलता है।

तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग भी इन लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्ति मानी जा सकती है। विशेषकर सबसे अधिक उल्लेख गुरु गोरखनाथ और उनकी बोक्साडी विद्या का हुआ है। ''धौला उड्यारी'' का उल्लेख पंवाड़ों में मिलता है। कहा जाता है यहां सत्यनाथ ने और गोरख ने तपस्या की थी, देवलगड़ में सत्यनाथ का मन्दिर है और उसकों लेकर राजा अजयपाल के सम्बन्ध में अनेक कथाएं/अनुश्रुतिया मिलती है। अजयपाल स्वयं नाथपंथ में दीक्षित था। उसकी वाणी भी नाथों की वाणी और मन्त्रों में शामिल है। श्रीनगर गढ़वाल के नाथों का मौहलला अब तक मौजूद है। पवाड़ों (वीरगाथाओं) में नाथों की बभूति, धूनी, कांवर की जड़ी, चिभटा, खरुवा (राख) की झोली, गुदड़ी, खुराशानी, बाघम्बरी आसन, अमृत की तुम्बी आदि सामग्री का उल्लेख मिलता है। उनकी तन्त्र विद्या को बोक्साडी लोग जादू-टोना के रुप में आजतक जीवित रखे हुए है। बोक्सा तराई की एक जाति है। सम्भवतः कभी वें इस विद्या के जानकार रहे हो। राजुला मालूसाही में जादूगरनी स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है।

इन गढ़वाली लोकगाथाओं की एक और प्रवृत्ति की ओर हम आपका ध्यान ले जाना चाहेंगे, वह प्रवृत्ति है, बाल्यकाल में विवाह का तय होना और फिर उसे भूल जाना तथा अचानक कन्या द्वारा युवावस्था में पर्दापण करने पर प्रेम का अनुभव करना, या अपने मंगेतर अथवा वाक्दत्ता को स्मरण करना उसे पाने की इच्छा करना। राजुला मालूसाही की लोकगाथा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। राजुला मालूसाही की गाथा हम आपकी जानकारी के लिए आगे प्रस्तुत करेंगे।। इन वीर गाथाओं में जिनमें प्रेमगाथा का भी पुट रहता है। गायक लम्बी लय में गाते है जिसे पवाड़ा लय विशेष कहा जाता है। इन में आलाप के लिए प्रायः 'हे'ध्वनि का प्लुत रुप में प्रयोग में लाया जाता है। चूंकि ये गाथाएं श्रोताओं (सुनने वालों) का सम्बोधित होती है, इसीलिए इनमें कहीं-कहीं 'मर्दो' 'महाराज' सुणदी सभाई आदि सम्बोधन प्रयुक्त होते है। आरम्भ में तो मंगलाचरण जैसी कोई चीज होती है या किसी का वंशगत परिचय होता है। कहीं भूमिका के तौर पर 'माई मर्दान का चेला, सिहणी का जाया', 'मर्द मरी जांदा, बोल रई जांदा' जैसे विरुद का प्रयोग होता है। कभी वीरगाथा सा पवाड़ा सुनाने वाला आवजी श्रोता की प्रशंसा उसकी वंशावली के साथ दान की महिमा को मंगलवार के रुप में बखान करता जाता है। अधिकांश लोकगाथात्मक पवाड़ों का अन्त स्त्री के सती होने विवरण के साथ होता है। मिलन की स्थिति में मंगल बधाई बजती है। त्रासद परिणित में हुतात्मा के शौर्य को सराहना के सज्ञथ पवाड़े का अन्त किया जाता है। ऐसी स्थिति में पवाड़े में वर्णित होता है। कि मां भड़ को अभीष्ट कार्य करने के लिए मना कर रही है लेकिन पुत्र युद्ध या अपनी इच्छा की जबरदस्ती पूर्ति के लिए मां की बात की अनसुनी करके निकल पड़ता है लेकिन फिर अपशकुन होने के कारण या तो मारा जाता है या बन्दी बना दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यह माना जाता है कि अमुख भड़ या मल्ल ने अपनी मां का कहना नहीं

माना था। इसीलिए उसके साथ अपशकुन हुआ। जीतू का गाथा इसका उदहारण है। वीरगाथाओं में आपको इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ये गाथाएं सा पवाड़े इतिहास नहीं है। ये इतिहास सांकेतिक गाथाएं है और इस इतिहास सामग्री में भी कल्पना और पुनरावृत्ति मिलती है। लेकिन इतिहास लेखन में उनसे कहीं-कहीं सहायता मिल सकती है। इन लोकगाथाओं में मध्ययुगीन सांस्कृतिक तत्वों की बहुलता मिलती है। नारी के लिए युद्ध करना, और उसे पाने के लिए प्राणों की बाजी लगाना मृत्यु से भयभीत न होकर युद्धभूमि में या संकट में पराक्रम दिखाना पवाड़ों में दिए एक नैतिक संदेश को उजागर करता है। गढ़वाली वीरगाथाओं (पवाड़ों) के ऐतिहासिक पात्रों को मानशाह (1555-1765 महीपत शाह (1584-1610) और फतेहशाह ( 1671-2165) आदि राजाओं का इतिहास सम्मत वर्णन प्राप्त होता है। राज्य के अधिकारियों में पुरिया नैथानी, शंकर डोभाल, पांच भाई कठैत, रामा धरणी और राजमाताओं में प्रदीपशाह की संरक्षिका के शासन काल राणी राज के कालखंड की घटनाएं, गोरखा आक्रमण, मुगल आक्रमण आदि की इतिहास संकेतिक जानकारी इन वीरगाथाओं में मिलती है। वस्तुतः गढ़वाल में प्रचलित ये लोकगाथाएं गढ़वीरों व भड़ों की वीर श्रृंगार और करुण रस से भरी काव्यात्मक गेय विरुदावलियां है। जिन पर राजस्थानी शौर्य गाथाओं की भी प्रभाव दिखता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मण्यकाल में अनेक क्षत्रिय जातियां, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र से गढ़वाल उत्तराखण्ड में आकर बसी थी। अतः अपनी संस्कृति और पूर्वजों की थाती को उन्होंने इस प्रकार के विरुदगानों (पवाड़ों) में और जागरों में पीढ़ी दर पीढ़ी आपने 'आवजी', ढोलवादकों, जागरियों और पुजारियों के माध्यम के सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

### 11.3.5 गढ़वाली लोकगाथा और पंवाड़ा

कालान्तर में लोकगाथा गायन की एक भिन्न पद्धति है। पवाड़ा गढ़वाली लोक गाथा श्रृंगार और प्रेम से युक्त होने पर भी करुण रस और वीर रस से भरी पड़ी है। वीरगाथाओं का दूसरा नाम 'पवाड़ा' भी है। हिन्दी साहित्य में आपने वीरगाथा काल, रीतिकाल, भक्तिकाल, आधुनिक काल का साहित्य पढ़ा होगा। गढ़वाल के राजाओं और वीर भड़ों की शौर्य पूर्ण गाथाएं यहां पवाड़ा कही जाती है। डा. गोविन्द चातक का कथन है कि ''पवाड़ा शब्द थोड़े से अर्थ परिवर्तन के साथ ब्रज, मराठी, गुजराती, राजस्थानी में 'पाबूजी' के पवाड़े सुप्रसिद्ध है। विद्याविलास चरित पवाड़ा जिसे आचार्य हीरानन्द सूरी ने 1428 ई. में रचा था, इसे पहली बार पवाड़े की संज्ञा दी गई थी। इसका पंवार राजाओं से डा. गोविन्द चातक कोई सम्बन्ध नहीं मानते है। पवाड़ों में किवदंती और स्थानीय लोकोक्तियां लोकधारणा का समावेश रहता है। अधिकांश गढ़वाली पवाड़े मध्य काल में रचे गए है। अनेक गढ़वाली लोकोत्तियां अपने में इतिहास की छाया लिए है। गढ़रनरेश स्वयं शूर होते थे और वीरों को जागीर आदि देकर उन्हें सम्मानित भी करते थे। इन वीरों या भड़ों (भटो) को वेतन दिया जाता था। ये राजाओं के रक्षक, स्वामिभक्त और विश्वसनीय होते थे। ये भड़ मल्ल या माल कहलाते थे। इनमें आपस में रणकुशलता और वीरता दिखाने की होड़ लगी रहती थी। सर्वप्रथम इन छोटी-छोटी गढ़ियों, ठकुराईयों को विजित कर जो कि उस

समय बावन के लगभग थी उनकों अजयपाल ने जीतकर अपने एकछत्र शासन की नींव डाली थी। फलतः उसे सीमा विस्तार के लिए तिब्बत, सिरमौर, कुमांऊ तथा मुगल साम्राज्य से युद्ध करना पड़ा। गढ़वाल नरेश, मानशाह, दुलाराम शाह, महीपत शाह मेदनी शाह और फतेहशाह को अपने राज्यकाल में डेढ़ दौ सालों तक बाहरी शक्तियों से युद्धरत रहना पड़ा था। कफ्फू चौहान (1500-1548) अजयपाल का प्रतिद्वन्दी राजा था वह उपूगढ़ का गढ़पति था। कफ्फू चौहान की गाथा अनुश्रुति के रूप में प्राप्त है। कफ्फू चौहान के बारे में प्रसिद्ध है कि वह बड़ा हठीला, स्वाभिमान नवजवान था। जब उसने राजा अजयपाल की अधीनता स्वीकार नहीं की तब अजयपाल ये उसका भारी संघर्ष हुआ। इस आक्रमण में कफ्फू की सारी सेना मारी गई। कहते हैं जब कफ्फू चौहान के पकड़े जाने और उसकी सेना के मारे जाने की खबर उपूगढ़ में पहुंची तो उसकी माता और पत्नी ने किले में आग जलाकर उसमें अपने को भस्म कर दिया था। कफ्फू चौहान को अजयपाल ने जब अपने चरणों में सिर न झुकाने पर उसके सिर को ऐसा झटका दिया कि उसका सिर अजयपाल के मुख से टकरा गया। कुछ लोगों का कहना है कि कफ्फू चौहान का सिर उछलकर गंगा में गिर पड़ा था। उपूगढ़ के गढ़पति कफ्फू चौहान की वीरगाथा के समान ही लोक में भानू धमादा विध्नी विजयपाल, काली हरपाल, बागा रावत, अजवावंपा, सौणू-विस्मू, ब्रह्म और विरमा डोटियाली, स्यूंराज-म्यूंराज आदि की कई वीरगाथाएं लुप्तप्रायः होती जा रही है। इनमें कुछ को तारादत्त गैरोला और ओकेले ने ''हिमालयन फोकलोर'' में संकलित किया है। किन्तु अब वे केवल पुस्तक में है। लोक में सुनने में नहीं आती। जो गाथाएं काल कवलित होने से बच पाई है और लोकपरम्परा में जीवित है। वें है- लोदी रिखोला की गाथा, माधो सिंह, गढ़ू-सुमरियाल, सूर्ज कुंवर, ब्रह्मकुंवर, जयदेव पंवार, कालू भण्डारी, रणू-झंकरु, हरि हिण्डवाण, तीलू रौतेली और सुप्या रौत की गाथा प्रमुख है। अब आगे हम लोदी रिखौला की गाथा के साथ माधोसिंह, रणू रौत, सुप्या रौत, कालू भण्डारी की लोकगाथा का गढ़वाली मूल पाठ एवं उसका हिन्दी अनुवाद आपके अध्ययन के लिए आगे प्रस्तुत करेंगे, अभी हम आपकी जानकारी के लिए गढ़वाली लोकगाथा की 'जागर' विधा पर प्रकाश डाल रहे है ताकि आप इस विधा को भली-भांति जान सकें।

## 11.4 जागर- एक लोकगाथा गायन पद्धति

जागर शब्द संस्कृत की जागृ (जाग्रत) करना धातु से बना है। इसका अर्थ है- जागरण अर्थात जागना। महाकवि कालिदास ने रघुवंश और महाभारत में भी जागर-जागृत (जाग्रत) शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'तम् जाग्रतो दूरभुदेति देवम्' आदि। गढ़वाल में देवताओं की नृत्यमयी पूजा, वाद्यवादन को घड़ियाला कहते है। जिसमें डमरु, थाली आदि वाद्यों को एक विशेष पद्धति में बजाया जाता है। इसमें गायन, वादन-पूजन करने वाला पुरोहित 'जागरी'कहलाता है। जिस व्यक्ति पर देवतस अवतरित होता है उस देववाहन या माध्यम को कही 'पस्वा' कहीं 'धामी' आदि कहा जाता है। 'पस्वा'या 'धामी'गांव का ही कोई ऐसा व्यक्ति जिसमें दैवी शक्ति की ग्राहयता होती है। जिस व्यक्ति के सिर पर देवता आता है, घड़ियाला लगाते हुये जब जागरी

पुरोहित दैवी शक्ति का आह्वान करता है तो उसमें कम्पन्न होता है जो धीरे-धीरे बढ़ता जाता है, जब कम्पन्न चरम सीमा पर पहुंच जाता है तो वह 'हव्'ध्वनि उच्चरित करता हुआ, उठकर नाचने लगता है। यह 'हव्'शब्द सम्भवत (आह्वान स्वीकार किया) का द्योतक है। थाली और डमरु का उत्तेजित स्वर, पुजारी का आह्वान गीत और रात्रि के सूने प्रहर, कुल मिलाकर ऐसा वातावरण उपस्थित करते है कि 'पश्वा' कांपने लगता है जो इस बात का प्रमाण होता है कि उस पर आहूत (बुलाए) गए देवता की शक्ति अवतरित हो गई है। डा. गोविन्द चातक के अनुसार- इन गीतों को जागर कहने के पीछे एक तर्क यह भी है कि इनमें देवशक्ति को जाग्रत करने के लिए आह्वान होता है। इसीलिए इनका प्रारम्भ जागने जगाने के उद्बोधन से होता है। ''हरि हरिद्वार जाग, बद्री-केदार जाग, धौली पयाल जाग, भूमि कर भूम्याल जाग, छेम का छेतरपाल जाग''आदि भिन्न-भिन्न देवताओं के लिए इस प्रकार के मिलते-जुलते उद्बोधन से जागर का अनुष्ठान प्रारम्भ होता है और देवता प्रकट होने के लिए बुलाया जाता है जैसे- ''प्रकट ह्वे जान, प्रकट ह्वे जान पांच भई पंडऊ। प्रकट ह्वे जान कोन्ती माता.....''ऐसे आह्वान से जब दैवी शक्ति 'पश्वा' पर प्रकट होती है तब उसकी लीलागान करते हुए नचाया जाता है।

भारतीय नाट्य शास्त्र में यह विश्वास किया जाता है कि नृत्य से देवता प्रसन्न होते है। नृत्य ही गढ़वाल में पूजा-रुप है। किसी के सिर पर देवता का अवतरित होना और उसको नचवाना सम्भवतः समग्र भारत में पाया जाता है। सम्भवत यह परम्परा पुराकाल में यक्ष-गन्धर्व और किन्नरों में प्रचलित रही होगी।गढ़वाल में जागर पूजा का महत्त्व नृत्य समारोह और लीलागायन में ही नहीं बहुत कुछ रोग निवारण के लिए किए गए आश्वासनों में भी है। लोक 'पश्वा' को अक्षत देकर प्ररून पूछते है- जिन्हें बार-बार उछालता हुआ उत्तर देता है और आधि-व्याधि के निवारण के लिए उपाय सुझाता है। कुछ 'पश्वा'या पुछारे यही काम करते है। वे अनुष्ठान का अवसर न होने पर भी प्रश्नों के उत्तर देते है। उन्हें 'वाकी'अथवा 'वाक्या'कहते हैं क्योकि वे वाक् बोलते हैं।देवताओं को नचाने के लिए आयोजित समारोह के जारता (देवयात्रा) मंडाण आदि कहकर पुकारा जाता है। पांडवों की जात को 'पंडवार्त'और देवी की जात को 'अठवाड'कहते हैं। किसी व्यक्ति के घर में आयोजित ऐसे समारोह को घड़ियालों का नाम दिया जाता है। आदिम मानव ने ब्राह्माण्ड की ऐसी शक्तियों को जागर द्वारा अवतरित करने में विश्वास किया, यह कल्पना करने में एसे देर नहीं लगी कि दैवी शक्ति किसी प्रतीक में अवतरित हो सकती है। इसी भावना के अनुरुप वृक्षों, पर्वतों, मूर्तियों आदि को उसने प्रतीक का स्थान दिया और स्वयं मानव को भी 'पश्वा'के रुप में एक प्रतीक माना जाने लगा जिससे दैवी शक्ति के अवतरण की अवधारणा को प्रश्रय मिला। डा. मदन चन्द्र भट्ट का कथन है कि, ''ब्रह्मा के बाद प्रजापति बने। रुद्र ऋषि ने कैलाश में अपना आश्रम बनाकर नेपाल के पशुपति नाथ से लेकर वाल्हीक तक धर्म का प्रचार किया।। इसी रुद्र ऋषि ने ताण्डव की परम्परा शुरु की जिसमें नृत्य के माध्यम से मानव शरीर में पवित्र आत्माओं का अवतरण कराया जा सकता था। ये वैदिककालीन रुद्र ही पुराणों में 'शिव'नाम से प्रसिद्ध हुए है। ऐसा प्रतीत होता है यह ताण्डव नृत्यगीत ही जागर के रुप में प्रचलन में आया है।

डमरु में यदि प्रचण्डता को साथ लेकर एकाकार होकर एक ही स्वर-ताल में बजकर कम्पन्न उत्पन्न कर देते है"।

### 11.4.1 रणभूत तथा वार्ताएं

किसी युग के जातीय वीरों यहां तक कि भूतों- रण में मारे गए योद्धओं (रण भूतों) आछरियों तक को भी जागर में नचाया जाता है। लेकिन आश्चर्य है कि जहां पाण्डव, जीतू बगड्वाल को यह गौरव मिला, वहीं राम, शिव आदि इस पद्धति से अवतरित किए जाने में उपेक्षित रहे है। सभी स्थानीय देवताओं को जागर में नाचने और मनुष्यों द्वारा आवाहित करने का सुअवसर मिलता है, इनमें नगेलों, घंटाकर्ण, खितरपाल, विनसर, कैलावीर, भैरव, नरसिंह, हीत, देवी, हनुमान आदि उल्लेखनीय है। किन्तु उनके सम्बन्ध में न लम्बे कथा गीत प्रचलित है और न वे जागरी पुरोहित द्वारा थाली, डमरु के घड़ियाले पर गाए जाते है। इनमें ढोली आवजी, ढ़ोल-दमामा बजाते हुए बीच-बीच में देवता का विरुद गाते है। सब कुछ होते हुए भी उन्हें जागर के अन्तर्गत नहीं लिया जाता।

डा. चातक का कथन है कि ''देवता दिन और रात चार पहरों में नाचता है। लेकिन रात में विशेष आयोजन होते है। इन चार प्रहरों में देवता रात भर नहीं नाचता और न जागरी निरन्तर गा पाता है। फलतः बीच के समय में था तो युवक नाचने बैठ जाता है। फलतः बीच के समय में या तो युवक नाचने बैठ जाते है या फिर दर्शकों में से कोई व्यक्ति उठकर कानों में हाथ डालकर लम्बे स्वर में देवताओं सम्बन्धी कोई प्रसंग सुनाने लगता है जिसे वार्ता कहा जाता है। वार्ता सुनाने वाले के प्राथमिक बोल इस प्रकार होते है''

''हे ढोली मैं निद्रा में खोया था.....तूने ढ़ोल के शब्द और नगाड़े की गूंज से मुझे बुलाया है। मैं नदियों से बहते, शिखरों से लुढ़कते हुए यहां आया हूं। आज तू अपने वाद्य से मुझे फूल सा खिला दे, भौंरे सा उड़ा दे। ढ़ोली ढोल बजाता है, लोग नाचते है और बीच-बीच में कोई कथिक (कथा कहने वाला) राम, शिव, पांडव अथवा किसी पौराणिक चरित्र की वार्ता सुनाने लगता है। वार्ताएं अनेक है।जागर वार्ता के अन्तर्गत नागराजा, कृष्ण के जागर, ब्रह्मकौंल (कुवंर के जागर), सूरज कौंल, चन्द्रावली हरण, कुसुमाकोलिन और सूजू की सुनारी की वार्ताएं दी गई है। गंगू रमोला और सिदुवा-विुदुवा की वार्ता, नागराजा कृष्ण के ही जागर के अंश है।सिदुवा-विदुवा तो पश्वा के सिर पर भी आते है और उन्हें कृष्ण के साथ-साथ नचाया जाता है। पाण्डवों के मंडाण को यद्यपि पंडवार्ता (पाण्डव वार्ता) कहा जाता है। किन्तु वे व्यक्तियों पर आधारित होते है, ढ़ोल दमामों के साथ नचाएं जाते है। सीता हरण, 'कद्रू-विनीता संवाद', निरंकार वार्ताएं है परन्तु नन्दा भगवती और गोरील, गोल्ल/गोरिया को नृत्यमयी पूजा दी जाती है।

### 11.4.2 कृष्ण से सम्बन्धित जागर गाथाएं

डा. गोविन्द चातक अपनी पुस्तक गढ़वाली लोकगाथाओं में गाथाओं की लोकप्रियता के विषय में लिखते है। कि 'गढ़वाल में कृष्ण का जागर सबसे अधिक लोकप्रिय है'।वहां उन्हें 'नागर्जा'या नागराजा कहा जाता है। एक जागर में उन्हें नागवंशी भी कहा गया है और अन्य में नागकन्या से विवाह करते दिखाया गया है। कलिया नाग का दमन और खाण्डव दाह की प्रेरणा देने वाले कृष्ण नागराजा कैसे कहलाएं, सम्भवतः इसके पीछे नाग प्रभुत्व रहा हो स्वयं उनकी लीला भूमि मथुरा में प्रचलित नागों की कन्याओं के नायक कृष्ण है। जब वासुदेव बालक कृष्ण को मथुरा से गोकुल ले जा रहे थे तो नदी के उफान में शेषनाग ने उनकी सहायता की थी। उनके भाई बलराम को शेषनाग का अवतार माना जाता है। कृष्ण को भी शेषशाची विष्णु का अवतार माना गया। मथुरा के मन्दिरों के उत्खनन से अनेक नाग मूर्तियां मिली है। मथुरा अंचल के लोग नागपूजा के बहाने कृष्ण की ही स्मरण पूजन करते है। गढ़वाल में नागों के गढ़ थे, उरगम, और नागपुर पट्टियां ही नहीं दशौली और पैनखण्डा में उनका अधिपत्य था, ऐट किन्सन ने हिमालयन गजेटियर में नामों के 61 मन्दिर गिनाएं है इनमें शेषनाग, वासुकी नाग, भकेल नाग, मंगल नाग, बेनी नाग, फेनी नाग, काली नाग, धौला नाग, कर्कोटिक नाग, स्यूड़ियां नाग आदि कई नागों की पूजा होती है। रमोली के सेम-मुखेन में नागराजा कृष्ण की पूजा होती है। इस क्षेत्र में गंगू रमोला की गाथा जुड़ी है। गंगा जी को नागनां जननी (नागों की माता) कहा गया है। गाथा के अनुसार वासुकी नाग की पत्नी विमला के दूधिया कौंल, वरमी कौंल, सूरज कौंल, धर्म कौंल, नीम कौंल, फूल कौंल, जत कौंल और सतकौंत नौं नाग पुत्र थे। गीतों में उसे 'जियावे नागीण'अर्थात् नागों की माता कहा गया है। उसके पुत्रों सुरजू कौंल, सौर ब्रह्मी कौंल से कृष्ण की बड़ी मित्रता थी वे कृष्ण को बडा भाई मानती थे और उन्हें ही उन्होंने 'जोत्रमाला'अथवा 'ध्यानमाला'नामक सुन्दरी को ले आने का संदेश दिया था।

मोतीमाला ध्यानमाला अथवा जोत्रमाला नाग जाति की कन्याएं बताई गई है। लेकिन कुसुमा कोलिन और सूजू की सुनारी निम्नवर्ण की रमणियां है। कृष्ण से उनका सम्बन्ध कृष्ण के परकीया प्रेम नहीं बल्कि कृष्ण के समत्व भाव दिखाने के प्रयोजन से जोड़ा गया है। कुसुमा कोलिन की वार्ता में कृष्ण स्नान करते हुए उएसकी टूटी लट पर मुग्ध हो जाते है और उसके पैरों के निशान चिन्हते हुये उसके घर तक पहुंच जाते है। उस समय कुसुमा कोलिन का पति इन्द्र को दुशाला बुनकर देने गया था, जैसे ही वह अपने घर पहुंचता है मुर्गा कृष्ण को जगाने के लिए बांग देता है, और वह हल्दीके बाड़े में छिप जाते है। इस वार्ता में मुर्गे की सुन्दर कलगी होने, और हल्दी के मंगल कार्यो में प्रयुक्त होने की प्रतिष्ठा को आधार प्रदान किया गया है।इस गाथा पर कबीर पंथ का प्रभाव है। गाथा में कृष्ण की सभा में कबीर, कमाल और दादू को बैठा वर्णित किया गया है। गंगू रमोला और कृष्ण सम्बन्धी गाथा में गंगू के पुत्रों सिदुवा-विदुवा को गोरखनाथ की बोक्साड़ी विद्या में पारंगत कहा गया है। सुरजूकंवर की गाथा में सिदुवा इसी प्रकार क चमत्कार करता हुआ दिखाया गया है। गढ़वाल के नाथ पंथियों में भी कृष्ण को अपने साथ

लपेटा है। एक गाथा में चन्द्रावली से कृष्ण की एक बेटी होती है जिसका नाम कृष्णावती है। कृष्ण ने चन्द्रावती से पैदा हुई अपनी बेटी को गुरु गोरखनाथ से ब्याह दिया। कृष्णावती योग के प्रति अरुचि होने से अपने भाग्य को कोसती है। इन लोकगाथाओं का कोइ ऐतिहासिक सिर-पैर नहीं है। ये पूर्णतः कल्पित है। गाथाकार ने कृष्ण का गोरखपंथ से सम्बन्ध जोड़ने के लिए या किसी गढ़वाल के नाथपन्थी लोकमानस ने गाथा में उसे अमर कर दिया है। कृष्ण के साथ कबीर, रैदास, गोरख का इन गाथाओं में जुड़ना गढ़वाल के लोकमानस के मन की एक धार्मिक सद्भाव की धन्य झांकी मिलती है।

कृष्ण की किसी नागकन्या के प्रति आसक्ति की ये गाथाएं नागों और यादवों के सम्बन्ध को प्रकट करती है। गंगू के पुत्र सिदुवा-विदुवा कृष्ण के मित्र थे। एक गाथा के अनुसार सूरजकौंल की बहिन सूरजी से सिदुवा का विवाह हुआ था। कुमांऊ की रमोला गाथा में कहा गया है कि कृष्ण की छोटी बहिन विजोरा उससे ब्याही थी। गढ़वाली लोक गीतों में भी सिदुवा को कृष्ण 'भेना' (बहिनोई) कहकर पुकारते है। नागराजा कृष्ण के जागर में पौराणिक वृत्त ही दुहराया हुआ मिलता है। इसमें कृष्ण के जन्म, गोचरण, कंदुक क्रीड़ा, कालियादमन, चीरहरण, गोवर्धन धारण, रास, गोपी विरह आदि विषय ज्यों त्यों वर्णित होते है।

### 11.4.3 चन्द्रावती की वार्ता

इसमें कृष्ण का चन्द्रावती के लिए प्रेम और उसकी के छल का प्रयोग वर्णित मिलता है। इस वार्ता में रुक्मिणी और चन्द्रावली को बहिन बताया गया है। कृष्ण चन्द्रावली के रुप की प्रशंसा युक्ति सुझाती है पर चन्द्रावली बच जाती है। अन्ततः रुक्मिणी बताती है तुम मेरा रुप धारण करों, कहो कि तुम्हारे जीजा (कृष्ण) का देहान्त हो गया है। आंसू बहाते उससे आश्रय मांगना। गाथा में वर्णन है कि कृष्ण रुक्मिणी का वेश बनाकर सो रहे थे तो चन्द्रावली को संशय हुआ। उसने भी रुप बदल दिया पर अन्त में कृष्ण ने उसे पकड़ लिया। ब्रज और बुन्दोली में चन्द्रावली छलन की गाथा मिलती है। गढ़वाली वार्ता में मौलिकता इस बात में है कि कृष्ण को चन्द्रावली के हरण की प्रेरणा और तरकीब रुक्मिणी ने बताई है।बुन्देली गाथा में कृष्ण उसे दही बेचते हुये देखते है और उसके रुप पर मोहित हो जाते है और उसे छलने का विचार स्वयं करते है। गढ़वाली लोकवार्ता में कृष्ण चन्द्रावली को छलने के लिए अनेक रुप धारण करते है लेकिन हर बार पकड़े जाते है। चन्द्रावली उन्हें पहचान जाती है। कृष्ण की रसिकता की ऐसी वार्ताएं गढ़वाल में प्रचलित है। जिनका आधार पौराणिक नहीं है। इन लोककथाओं (वार्ताओं) में मोतीमाला, जोत्रमाला के अपहरण के लिए कृष्ण सीधे सामने नहीं आते है। किन्तु 'सूजू की सुनारी'तथा 'कुसुमा कोलिन'में कृष्ण साक्षात् रुप के प्रति ही आकर्षित नहीं होते बल्कि उन्हें पाने के लिए प्रयत्न करत हुये भी वर्णित है।

## 11.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन करने से आप जान गए होंगे कि -

1. लोकगाथा किसे कहते हैं .
2. लोकगाथाओं का प्रतिपाद्य विषय क्या होता है
3. लोकगाथाएं कितने प्रकार की होती हैं ? उनका वर्गीकरण क्या हैं .
4. लोकगाथाओं की विशेषता क्या है .
5. लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां कौन-कौन है .
6. पवाड़ा, जागर, लोकवार्ता क्या हैं ? उसकी गायन पद्धति कैसी हैं .

## 11.6 शब्दावली

भेना - बहनोई

कुसुमाकोलिन - अन्त्यज जाति की एक रुपवती स्त्री

सिदुवा-विदुवा - गंगू रमोला पुत्र

अठवाड़ - देवी पूजन की पद्धति

वार्ता - दर्शकों के बीच से कोई जानकार व्यक्ति उठकर अपने दोनों कानों में उंगली डालकर लम्बे स्वर में जब देवताओं की गाथा का कोई प्रसंग सुनाने लगता है उसे वार्ता कहते है।

वाक्या - लोक में इसे 'पुच्छेर' भी कहते है। यह वाक् सिद्ध व्यक्ति होता है जो लोक द्वारा पूछे गए रहस्यमय प्रश्नों के उत्तर देता है। 'वाक्' बोलने से इन्हें वाक्या कहते है। ये व्यक्ति भूत, और भविष्य तथा वर्तमान के विषय में बताते है तथा आपदा से बचने के उपाय सुझाते है।

जागरी - गायनपूर्वक जागर वाता लगाने तथा डौर-थाली वादन करने में दक्ष व्यक्ति जागरी कहलाता है।

मण्डाण - देवपूजा में देवनृत्य देखने व वार्ता सुनने के लिए आए हुए भक्तों (देवता के आराधकों) का हुजूम। जो नियमानुसार शान्त चित्त से एक स्थान पर विधिवत् बैठे रहते है। जिनमें देवताओं के पश्वा (जिन पर

देवता आकर्षित होते है) भी बैठे रहते है। उसे मण्डाण कहते है। सम्भवतः मन्दिर स्थान शब्द के अपभ्रंश हो जाने के मण्डाण (मन्दिर स्थान-मन्दिर थाण = मण्डाण) बना है। अधिकांश देवयतनों (देव मन्दिरों) के चौतरों या आंगन अथवा कमरों में ही मण्डाण लगवाते हैं।

## 11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. गढ़वाली लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।


## 11.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोकगाथा से आप क्या समझते है ? लोकगाथा और लोककथा में अन्तर बताओं।
2. गढ़वाली लोकगाथाओं पर एकविस्तृत निबन्ध लिखिए।

# इकाई12गढ़वालीलोककथाएं:स्वरूपएवंसाहित्य

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 गढ़वाली लोक कथाएं : स्वरूप एवं साहित्य
12.3.1 गढ़वाली लोककथाएं और उनके भेद
12.3.2गढ़वाली लोक कथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियां
12.3.3गढ़वाली लोककथाएं : शैली एवं शिल्प
12.3.4गढ़वाली लोककथाओं में शिल्प एवं संवेदना
12.3.5 गढ़वाली लोककथाओं की विशेषताएं
12.4 सारांश
12.5 अभ्यास प्रश्न
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 12.1 प्रस्तावना

'कथा'शब्द संस्कृत की कथ् धातु से कथा रूप में निष्पन्न हुआ है। जैसे-हिन्दी में (कह) से कहानी बनी है। कथ् का तात्पर्य है- किसी चरित्र, घटना, समस्या या उसके किसी पहलू का रोचक और मनोरंजन वर्णन करना। परन्तु इधर वर्तमान में कथा शब्द का अर्थ संकोच हो गया है। कथावाचक द्वारा धार्मिक उद्देश्यों से श्रोताओं को सुनाई जाने वाली कथा के रूप में इसका अर्थ रूढ़ होता जा रहा है। लोक की भाषा अर्थात् बोली में परम्परा से चली आती हुई मौखिक रूप में प्रचलित कहानी लोककथा है। अंग्रेजी में लोककथा के लिए 'फोक टेल'शब्द का प्रयोग होता है। डा. देवसिंह पोखरियाल लोक कथाओं में लोकमानस की सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा, राग-विराग, आस्था-आकांक्षा आदि मानवीय भावनाओं की प्रधानता स्वीकारते हैं । उनका कथन है कि लोककथाओं में शब्दाडम्बरों की अपेक्षा भाव सा कथ्य की प्रधानता रहती है और लोकसाहित्य का उत्कृष्ट रूप लोककथाओं में ही देखने को मिलता है। इनमें वर्णन की

लघुता और स्वाभाविकता, प्रेम की अभिन्न पुट, अश्लील श्रृंगार का अभाव, मानव की मूल प्रवृत्तियों से साहचर्य, आशावादिता, उपदेशात्मक, मंगल भावना, सुखान्तता (हास्य-रोमांच) आलौकितता तथा औत्सुक्य की भावना रहती है।मांगल गीतों की तरह गढ़वाल के लोकमानस में लोक कथाएं भी लोकप्रिय हैं। आज भी गढ़वाल के बूढ़े लोग चौपालों में बैठकर अपने (नातियों या छोटे नौनिहालों) को लोक कथाएं सुनाकर उनका मनोरंजन करते देखे जा सकते हैं। लोककथाओं का उत्स अर्थात जन्मस्रोत वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रन्थों में ढूंढा और देखा जा सकता है। लोक-कथाओं की प्राचीन पुस्तकें पंचतन्त्र, हितापदेश आदि है। पालि में बौद्ध कथा साहित्य की लोक कथाओं को 'जातक'कहा जाता है। नीतिकथाओं के रूप में भी लोक को ही उपदेश देने का प्रयास है। संस्कृत, बौद्ध और जैन कथा साहित्य में लोकमानस की ही अभिव्यक्ति हुई है। पाली की तरह अपभ्रंश साहित्य में भी लोककथाओं की बहुलता है। 'पउम चरिउ' इसका उदहारण है। संस्कृत में लोकमानस की अभिव्यक्ति कराने वाली लोक कथाओं की भरमार है। 'वृहत्कथा'पैशाची में जिसे 'बढ्ढकथा'कहा जाता है संस्कृत में वृहत्कथा, वृहत्कथामंजरी और कथा सरित सागर के नाम से मिलती है। 'बेतालपंचविशतिका'में पच्चीस कहानियां है जिसका हिन्दी अनुवाद 'बेताल पच्चीसी'के रूप में मिलता है। वे भी तत्कालीन लोककथाओं के ही रूप है। 'शुकसप्तति'में सत्तर कथाएं हैं।

## 12.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको यह ज्ञात हो सकेगा कि

1. लोक कथाएं यहां के लोक को कहां तक अपने में आत्मसात् कर पाई है। इन लोक कथाओं और अन्य प्रदेशों की लोककथाओं में क्या अन्तर है ?
2. गढ़वाली की ये लोक कथाएं लोक को क्या संदेश देती है ? इनका भाषा स्वरूप तथा कथ्य क्या होता है ?
3. इनका कितना पुराना साहित्य है और उसका वर्तमान स्वरूप क्या है ?
4. इन लोककथाओं के मूल में कल्पना तत्व के साथ यहां की प्रकृति, मिथ, और इतिहास का कितना धाल-मेल हुआ है ?
5. इन लोक कथाओं की मूल प्रवृत्तियां तथा शिल्प की क्या विशेषता है। ?

## 12.3 गढ़वाली लोककथाएं- स्वरूप एवं साहित्य

गढ़वाल के लोक मानस पर इन कथाओं का प्रभाव पड़ा तो है लेकिन बहुत कम। गढ़वाली का कथा साहित्य यहां की आदिम जाति के विश्वासों, यक्ष, आंछरी (अप्सरा), कृष्ण,

नागदेवता और पाण्डवों, पिशाचों, दानवों तथा आत्माओं से सम्बन्धित तथा यहां के शासकों से जुड़ी है। यहां की पशु-पक्षी कथाओं पर भी हितोपदेश, पंचतन्त्र का प्रभाव अधिक नहीं है। वे यहां की प्रकृति और लोक के मिथकों पर सृजी प्रतीत होती है। यही गढ़वाली लोककथा की अन्य भारतीय लोककथाओं से भिन्नता है। यहां अतिशयोक्ति या अतिक्रान्त प्रयोग वीरों की कथाओं में उनके शौर्य के रूप वर्णन में देखा जा सकता है। गढ़वाली कथाओं का भी हमारे साहित्य में वही आदर है जो लोकगाथाओं या लोकगीतों का है। अतः प्रचुर मात्रा में लोककथाएं सृजी गई है। गढ़वाल में लोककथा के लिए कथा-कहानी और बारता इन तीनों शब्दों का व्यवहार होता है। डा. चातक के अनुसार, 'बारता मुख्यतः देवी-देवताओं की पौराणिक कथाओं के कहते है'।कथा काल्पनिक मानी जाती है और कानी (कहानी) जीवन कर वास्तविक घटनाओं से सम्बद्ध होती है। गढ़वाली में 'कथणों'धातु का अर्थ झूठ बनाना अथवा कल्पना करना होता है। वैसे कथा देवताओं की भी हो सकती है किन्तु बारता (वार्ता) में बात का भाव प्रधान होता है और कथातत्व गौंण कथा-कहानी और वार्ता (बारता) सुनने सुनाने को दो रूप हो सकते है। एक तो कथाएं की जाती है। इनके पीछे कोई धार्मिक प्रेरणाएं होती है और वे अनुष्ठान के रूप में की जाती है। सत्यनारायण की कथा, भागवत की कथा, महाभारत, रामायण की कथाएं इसके उदाहरण है।

इनका लोकगाथाओं से इस प्रसंग में सीधा सम्बन्ध नहीं है क्योकि ये पढ़कर सुनाई जाती है और जन साधारण उनके प्रति कथा का भाव नहीं रखता। वास्तविक कथाएं तो वे होती है जो बड़ी-बूढ़ियां विश्राम के क्षणों में बच्चों को सुनाया करती है या स्वयं पशु चराते हुए, परस्पर सुनते सुनाते है। वार्ता केवल देवी-देवताओं के जागर में नृत्यमयी उपासना के बीच सुनाई जाती है। प्रायः रात्रि ही उसके लिए उपयुक्त होती है। रात में देवता का नृत्य देखने के लिए एकत्र हुए लोगों मनोरंजन के लिए कभी वार्ताएं आवश्यक समझी जाती थी। इस अवस्था में वार्ता का ज्ञाता कोई भी व्यक्ति समूह के बीच से उठ खड़ा होता है और दोनों कानों में उंगली डालकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ देता है। वार्ता के आमुख के रूप में वह ढोल बजाने वाते 'औजी'को सम्बोधित करता है। गढ़वाल में देवी-देवताओं की वार्ताओं के समान अनिष्टकारिणी शक्तियों (भूत-आछरी) का मनौती के लिए नृत्य के साथ जो गीत गाए जाते है उनमें कथा का अंश बहुत होता है और उनकों रांसों कहा जाता है। गोविन्द चातक सम्भावना करते है कि कहीं यह शब्द रासो से मिलाजुला भाव लिए न हो, वैसे बोलचाल में रासो का अर्थ कथा ही होता है। गढ़वाली कानी (कहानी) का अथ मनोरंजन से है। कहानी प्रायः गद्य में ही होती है। कथाएं भी अधिकांशतः गद्य के माध्यम से सार्वजनिक की जाती है । गीत के रूप में जागर, पवाड़े, चैती आदि अनेक कथा गीति अथवा गीत कथाएं मिलती है।गढ़वाली लोकगाथाओं का शिल्प भी बड़ा सुगढ़ है। वे कथासंवादों के द्वारा आगे बढ़ती है। वर्णन की बारीकी और काव्यात्मक विवरण के लिए उनमें अधिक स्थान नहीं होता। पात्रों का चरित्र-चित्रण घटनाओं के आधार पर के अल कहानीकार या वाचक के मुख से होता है। मानव इन लोक कथाओं में अपने सब गुण-

दोषों के साथ उपस्थित मिलता है। उसमें भले-बुरे सभी तरह के पात्र होते है। वे अपनी सहज प्रवृत्तियों से प्रेरित मिलते है। प्रेम की अश्लीलता अभिव्यक्ति इन लोककथाओं में नहीं मिलती हैं।

वीरगाथाओं के नायक भड़ होते हैं। वे ऐतिहासिक चरित्र होते हैं। कुमांऊ और गढ़वाल, सिरमौर पर दिल्ली के बादशाहों के अनेक आक्रमण हुए हैं। माधो सिंह भण्डारी, लोदी रिखोला, कफ्फू चौहान, भानू, रणूरौत आदि की गाथाएं तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिवेश एवं घटनाओं को इन कथाओं से संकेतिक करती है। इनमें श्रृंगार और प्रेम के प्रसंग जुड़े होते है। मालू राजुला इसी कोटि की कथा है। भड़ों की स्त्रियां अपने सतीत्व की रक्षा करती मिलती है।

देवी-देवताओं, परियों, भूतों, राक्षसों, चमत्कारों तथा आलौकिक शक्तियों की कथाएं आदिम मानव के भावों (मिथकों) अर्थात विश्वासों कीइन्हीं कथाओं में आज तक जीवित हैं।प्रागैतिहासिक काल की अनेक सांस्कृतिक बातें जैसे- राक्षसों की कन्याओं से विवाह, नाग और हूण कन्याओं पर भड़ों की आसक्ति, उनका रूपवती होना , यक्षों का पिशाचों की दैवीय शक्तियों से युक्त होना आदि विश्वास के आधार पर गढ़वाली लोकमानस आज भी उन्हें पूज रहा है और उनकी लोककथाओं को अपने समाज में जीवित रखकर बांच रहा है।

### 12.3.1 गढ़वाली लोककथाएं और उनके भेद (वर्गीकरण)

डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' के अनुसार गढ़वाल में मुख्यतः जो लोककथाएं प्रचलित है उनके दस प्रकार हैं-

1. देवी-देवताओं की कथाएं
2. पशु-पक्षियों की कथाएं
3. भूत-प्रेत और जग्सो (यक्षों-राक्षसों) की कथाएं
4. परियो (मात्रियों और आछरियों) की कथाएं
5. वीर बहादुरों की कथाएं
6. हास्य कथाएं
7. राजा, रानियों और राजकुमारो-राजकुमारियों की कथाएं
8. जीव-जन्तुओं की कथाएं
9. तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना की कथाएं

मोहनलाल बाबुलकर ने अपनी पुस्तक 'गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना'में गढ़वाली लोककथाओं का वर्गीकरण, यहां की कथाओं की उपयोगिता और उनके विषयों के आधार पर निम्नवत् किया है-

1. देवकथाएं
2. कथा
3. व्रत कथा
4. उपदेशात्मक कथाएं
5. पक्षियों की कथाएं
6. पशुओं की कथाएं
7. ज्ञान की कथाएं
8. मनोरंजन की कथाएं
9. भूतों की कथाएं
10. परियों की कथाएं
11. समाधान मूलक कथाएं
12. अन्य कथाएं

यहां ज्ञातव्य है कि डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'और मोहनलाल बाबुलकर के वर्गीकरण में प्रायः एकरूपता है, बाबुलकर जी ने राजा-रानी और राजकुमार-राजकुमारियों की कहानियों का तथा तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना वाली लोककथाओं, व हास्य लोककथाओं को अपने वर्गीकरण में छोड़ दिया है। अब डा. गोविन्द चातक द्वारा किए गए गढ़वाली लोककथाओं के वर्गीकरण को देखिए-

1. देवी-देवताओं की कथाएं
2. परियों, भूतों, चमत्कारों की आश्चर्य तथा उत्साहवर्धक कथाएं
3. वीर कथाएं
4. प्रेम गाथाएं

5. पशु-पक्षियों की कथाएं

6. जन्मान्तर और परजन्म की कथाएं

7. कारण-निर्देशक कथाएं

8. लोकोक्ति मूलक कथाएं

9. हास्य (मौर्ख्य) कथाएं

10. रूपक अथवा प्रतीक कथाएं

11. नीति अथवा निष्कर्ष गर्भित कथाएं

12. बाल कथाएं

सर्वप्रथम तारादत्त गैरोला ने गढ़वाली लोक कथाओं का विभाजन इस प्रकार किया था-

1. वीर गाथाएं

2. परियों की कथाएं

3. पशु-पक्षियों की कथाएं

4. जादू-टोना की कथाएं

बाद में डा. चातक ने इन्हें युक्ति संगत न मानते हुए तारादत्त गैरोला के विभाजन को और भी बुद्धिगत करके लोककथाओं की 12 भागों में विभाजन प्रस्तुत किया तथा वार्ता और कानी (कहानी) का अन्तर भी स्पष्ट किया। उन्होंने अधिकांश देवकथाएं एवं वीर गाथाएं प्रायः वार्ता के अन्तर्गत परिगणित की है। निष्कर्षतः इन चारों विद्वानों तारादत्त गैरोला, डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', मोहनलाल बाबुलकर और डा. गोविन्द चातक के द्वारा कृत गढ़वाली लोककथाओं के वर्गीकरण में निम्न लोक कथाएं प्रमुखता में परिगणित की गई है।

1. वीरपुरुषों की कथाएं 2. प्रणय सम्बन्धी कथाएं 3. भूत-प्रेत, यक्षों की कथाएं 4. पशु-पक्षियों पर आधारित 5. आछरियों पर आधारित 6. राजा-रानियों, राजकुमारों से सम्बन्धित 7. हास्यानुप्रणित लोककथाएं, बाल कथाएं, नीतिकथाएं और देवी-देवताओं पर आधारित कथाएं।

### 12.3.2 गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियां

गढ़वाली लोककथाओं के वर्गीकरण के बाद अब आपको गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियों की जानकारी पाना अत्यावश्यक है। अतः हम सर्वप्रथम विद्वान लेखक मोहनलाल बाबुलकर द्वारा बताई गई गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियों का

अवलोकन करेंगे। बाबुलकर जी ने 43 प्रवृत्तियों का उल्लेख अपनी पुस्तक गढ़वाल लोकसाहित्य की प्रस्तावना में किया है। ये प्रवृत्तियों अग्रांकित है- 1. कर्मयोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास 2. प्राणों की अन्यत्र प्रतिष्ठा मिलना 3. मन्त्रबल से शरीरान्तरण की प्रवृत्ति 4. शरीर छोड़ प्राणों की दूसरे जीव में स्थिति 5. चमत्कारी गुण 6. पशु-पक्षियों की भाषा 7. सहानुभूति और सहायता 8. भगवान और उसकी शक्ति पर विश्वास 9. धर्म साक्षी 10. प्रकृति की सहानुभूति 11. जादू द्वारा अनहोनी बातें 12. स्त्री पात्रों की सदृश्यता 13. पुरुषों की अपने आपकों नायिकाओं को सौपंने की प्रवृत्ति 14. पछताने की प्रवृत्ति 15. समस्यामूलक उक्तियों द्वारा समाधान की प्रवृत्ति 16. व्रत रखने की प्रवृत्ति 17. प्रेम की प्रधानता 18. स्वप्नावस्था में देखी राजकुमारी को नापे की होड़ 19. सभी कथाओं में लगभग एक ही प्रकार की घटनाएं 20. बहिन तथा पत्नी का स्वार्थी होना 21. सौतियां मां का क्रूर व्यवहार होना 22. सास-बहू का झगड़ा 23. पुरुष बलि 24. भूत-प्रेतों की बाहुल्यता 25. जादू की सहायता से दुश्मनों को परास्त करना 26. छोटी डिबिया से बावन व्यंजन तैयार करना 27. रानी या राजकुमारी के पेट से सिलोड़ा सा सर्प निकालना 28. स्त्री का पुरुष से प्रेम और अपने पति को मारने की साजिश 29. स्त्रियों का पति की मांसभक्षी से फायदा उठाना 30. जानवरों से असमान विवाह की प्रवृत्ति जैसे- स्याल का विवाह बाधीण से 31. विधवा को नासमझ, मक्कार, जाली, और कुकर्मी समझने की प्रवृत्ति 32. उपदेशात्मक के साथ मनोरंजकता की प्रवृत्ति 33. लोककथाओं में तीन सौ से, चार हजार रूपये, सात भाई एक बहिन, सात समुन्दर, सात परियां तात्पर्य है कि सात नम्बरों की बार-बार पुनरावृत्ति। 34. मामा-मामी का रिश्ता नायकों के प्राण बचाता है। 35. राजकुमारियों की तुलना फूलों से करने की प्रवृत्ति 36. राजकुमारी के मुंह से प्रसन्नता में सफेद फूलों का झड़ना और दुख में कोयले झाड़ना 37. आदमी का कड़ावा में पकना, झझर छूने पर जीवित होना 38. निल्लाद तथा अमृत ताड़ा द्वारा जीवित होना 39. आत्मिक असन्तोष के कारण पक्षी बनने की प्रवृत्ति 40. पंखों को जलाकर एवं मूंछों को रगड़कर राक्षसों की रक्षा करना 41. राह चलते लोगों को गद्दी का मालिक बनाने की प्रवृत्ति 42. पशु-पक्षियों का कथानायकों एवं नायिकाओं का सहायक होना 43. स्त्रियों द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा, तथा पुरुषों द्वरार मां के दूध का वास्ता देकर कठिन कार्यों पर विजय प्राप्त करने की उल्लेखनीय प्रवृत्ति का पाया जाना।

मोहनलाल बाबुलकर जी ने गढ़वाली लोककथाओं की जो 43 प्रवृत्तियां बताई है भिन्न-भिन्न गढ़ववाली लोककथाओं की अर्न्तवस्तु के अनुसार निर्धारित की गई है। डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'का गढ़वाली लोककथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में कहना है कि ''गढ़वाली लोककथाओं में गढ़-जनजीवन के चिर-परिचित रूप चित्र मिलते हैं । इनमें युग-युग की भाव धाराओं, सामाजिक भाव-कल्पनाओं तथा सांस्कृतिक गीत विधियों का यथार्थ निरूपण मिलता है। समाज की विभिन्न समस्याओं की सुन्दर व्याख्या और मानव के सुख-दुःख की जीवन रूप मिलता है। उनके द्वारा प्रदर्शित गढ़वाली लोककथाओं की प्रमुख प्रवृत्तियां है-

(क) शाप का प्रचुर प्रयोग- प्राचीन साहित्य की तरह इन लोककथाओं में भी शाप का प्रचुर प्रयोग मिलता है। शाप के कारण मनुष्य का पशु-पक्षी, पत्थर, बेल, पेड़, सांप, चूहा, बिल्ली आदि बन जाना, चेहरा विकृत होना, अंग-भंग होना, इन सबके पर्याप्त उदहारण इन लोक कथाओं में मिलते है।

(ख) कर्मानुसार फल- अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल पाना, यह भी उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। 'सरण दादू पाणी दे'कथा में लड़की को अपनी करनी का फल भोगना पड़ता है। प्यासे बैल की तरह वह भी जीवन भर चिड़िया के रूप में पानी के लिए तरसती रहती है। 'गुरु और चेला'लोककथा में अपने गुरु को धोखा देने के कारण चेले को अपनी जान गंवानी पड़ती है। 'सियार और भगवान'कर कथा में सियार को अपनी करनी का फल मौत मिलती है।

(ग) मनुष्यों का पशु-पक्षियों की और पशु-पक्षियों को मनुष्यो की भाषा समझना- कई गढ़वाली लोककथाओं में मनुष्य-सियार, चूहा, बाघ, हिरन, रीछ, कौआ आदि से बात करता है। पंचतन्त्र और कथा सरितसागर की कथाओं का इन लोककथाओं पर पर्याप्त प्रभाव मिलता है। 'सियार और रीछ'की कथा में सियार गांव वालों को भैंस के मारने के विषय में बताता है तब गांव वाले सियार के कथनानुसार जंगल चले जाते हैं। 'भट्ट कुटक'कथा में पति चिड़िया बनी हुई और चिड़िया की तरह बोलती अपनी पत्नी की भाषा समझता है।

(घ) तन्त्र-मन्त्र और जादू टोने कर प्रयोग- 'मार-मार सोटा, बांध-बांध डोर'में मन्त्र के प्रभाव से रस्सी दुश्मन को बांध देती है और डन्डा पीटने लग जाता है। तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव से प्राणियों की झील बन जाना, पत्थर के रूप में बदल जाना, 'राजकुमारियों और जग्सै नौनि'कथा में राजकुमारी का अपनी तलवार से सात परियों को मारना बताया गया है। सात परियां सुन्दर, झील-बाग, सुहावना मौसम, सोने का सिंहासन, मोतियों के पेड़ और जेवरों के फल-फूल के रूप में बदल जाती है। छोटी सी डिबिया में सौ मन भोजन तैयार होना, छोटी सी हंडियां में छत्तीस प्रकार के बावन व्यंजन पकना, जलती आग में कूद जाना, उफनती नदी-नालों को पार करना, दुर्गम चोटियों पर चढ़ना, पक्षियों की भांति उड़ना, रूप बदलना, यह सब तन्त्र-मन्त्र और जादू टोनों से आदमी के बाएं हाथ का खेल हो जाता है।

(ड़) प्राणों की अन्यत्र स्थिति- जग्सौं (राक्षसों) के प्राण सात समुद्र पर ऊँचे पेड़ पर लटके पिंजरे के अन्दर बन्द तोते के रूप में मिलते है। तोते का गला घोटनें से राक्षस का गला घुट जाता है, टांगे तोड़ने से राक्षस की टांगे टूट जाती है। इसी प्रकार के प्राण मैना के किसी पत्थर की मूर्ति में, किसी पेड़ में मिलते है।

(च) भूत-प्रेतों की भयभीत कर देने वाली घटनाओं का चित्रण- भुतहे मकान में रात में भूतों का नाच और हल्ला-गुल्ला करना, मकान में रहने वालों का बेहोश होकर मर जाना, भूतों की अनोखी करामातें जैसे- आदमियों का पीछा करना, कभी-कभी स्त्रियों का सहायता करना,

रूपया-पैसा देना, सौ-सौ गज की दूरी पर चीज उठाना, पहरा देना आदि बातों का उल्लेख मिलता है।

(छ) प्रेम, रूप और सौन्दर्य कर अद्भुत वर्णन- सौन्दर्य के वशीभूत होकर पुरुष परियों और यात्रियों को अपना जीवन समर्पित कर देता है। प्रेम के प्रभाव से सब कुछ करने को तैयार रहता है, इसी प्रकार राजकुमारियां, अप्सराएं और रानियां भी प्रेम और रूप के वशीभूत होकर सब कुछ करने को तैयार रहती है।

(ज) मनुष्यों और पशुओं की बलि- माधो सिंह की लोककथा में माधो सिंह को सपना आता है कि जब वह अपने लड़के का बलि चढ़ाएगा, तभी नहर में पानी आ सकेगा। इस बात को ज बवह दुःखी होकर अपनी स्त्री को सुनाता है तो किसी प्रकार मां-बाप की बात, बेटा सुन लेता है और तब वह बलि चढ़ाने के लिए जोर देता है। बलि चढ़ने पर नहर में पानी आ जाता है। अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए बकरों और भैसों की बलि चढ़ाकर देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का गढ़वाल के प्रायः सभी गावों में प्रचलन है।

(झ) पशु-पक्षियों का सहायक होना- इन कथाओं में पशु-पक्षी मनुष्य के सहायक के रूप में उसकी मदद करते है। जैसे-कौआ द्वारा खतरे की सूचना पाना, हंसों द्वारा पंखों पर बिठाकर सात समुन्दर पार कराना, नेवते द्वारा सांप के टुकड़े-टुकड़े किए जाना आदि घटनाओं से यह प्रवृत्ति मिलती है कि ये सब मनुष्य की सहायता के लिए सदा तत्पर रहते है।

गढ़वाली लोककथा में इनके अतिरिक्त हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'जी ने 8 और प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है-

1. ईश्वर-धर्म और भाग्य पर अटूट विश्वास
2. सास का बहू पर घोर अत्याचार
3. सौतेली मां का दुर्व्यवहार
4. बहन और पत्नी का स्वार्थी रूप
5. बोक्सा विद्या द्वारा परिस्थिति के अनुसार शरीर (चोला) का परिवर्तन
6. साधु-सन्यासियों के कथन में विशेष अनुभव की स्थिति
7. सपनों की अजीब सृष्टि
8. स्त्रियों में सतीत्व की रक्षा के लिए साहसिक कार्य करने की प्रवृत्ति

इस इकाई का अध्ययन करके आप, गढ़वाली लोककथाओं की उल्लेखनीय प्रवृत्तियों, तथा उनके स्वरूप और साहित्य से अवगत हो चुके है। आगे आपकों गढ़वाली लोककथाओं की शैली और शिल्प से अवगत होना है। अतः आपकों अब शैली और शिल्प की जानकारी दी जा रही है।

### 12.3.3 गढ़वाली लोककथाएं : शैली एवं शिल्प

शैली अंग्रेली शब्द 'स्टाइल'का हिन्दी रूपान्तरण है। भारतीय विद्वान शैली शब्द के मूल में 'शील' रूप को मानते हैं। शकटायन के उणादि सूत्र के अनुसार विद्वान इसे शा (शीड्) धातु में लक् प्रत्यय के योग से बना मानते हैं। जिसका अर्थ विद्वानों ने स्वभाव से लिया है। यास्क के निरुक्त में 'शील'शब्द का प्रयोग हुआ है। 'अभ्यासे भूयां समर्थ मन्यते। यथा अद्ये दर्शनीया, अद्ये दर्शनीया इति', 'तत् परुच्छेपस्य शीलम'अर्थात इस प्रकार के कथन वाली यह परुच्छेप ऋषि की शैली है। आचार्य पंतजलि ने भी महाभाष्य में शैली शब्द का प्रयोग किया है। 'एषा हि आचार्यस्य शैली लक्ष्यते। 'ग्यारहवीं सदी में उत्पन्न प्रदीपकार 'कैयट'ने 'शीले स्वभावे भावा वृत्तिः शैली'कहा तथा अमरकोष में शैली कर परिभाषा दी है,'शुचौ तु चरिते शीलम्'। जो कि स्वभाव को इंगित करता है। संस्कृत काव्य शास्त्र में शैली के लिए रीति शब्द प्रयुक्त किया गया है। आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य'विशिष्ट पद रचना रीति सूत्र में इसे काव्य की आत्मा (पद रचना अर्थात रीति) माना है। रीति का भाव शैली में आ गया है। भले ही रीति शब्द से केवल रचना वैशिष्ट्य भाव समाहित रहता था। पाश्चात्य् समीक्षक शीरों के अनुसार, 'शैली व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है'यह परिभाषा, शैली के पूर्व वर्णित 'शुचों तु चरिते शीलम्, शीले स्वभावे भावा वृत्ति'आदि सूत्रों की पुष्टि करती है। डा. नगेन्द्र के अनुसार, 'शैली विशेष भाषिक संरचना है'।अब 'शिल्प'क्या है ? इस पर विचार करते है। शिल्प का सम्बन्ध अभिव्यक्ति एवं रूप रचना की समस्त प्रक्रियाओं से होता है। इसीलिए किसी साहित्यिक कृति की शिल्प विधि का पता लगाने के लिए हमें उसकी रचना मेंकाम आने वाली विभिन्न विधियों और रीतियों की ओर ध्यान देना पड़ता है, लेकिन शैली का सम्बन्ध अभिव्यक्ति या रूप रचना की प्रक्रिया से न होकर अभिव्यक्ति के प्रकार विशिष्ट से होता है। अभिव्यक्ति के दो पक्ष होते हैं - बाह्य और आन्तरिक। बाह्य का सम्बन्ध केवल रूप रचना से होता है अर्थात् दृष्टि इस ओर रहती है कि विषय-वस्तु की किस रूप में संयोजना की गई है। आन्तरिक पक्ष के अन्तर्गत मनोभावों का विश्लेषण, अर्न्तद्वन्द्व, कुंठाएं, संवेग तथा वृत्यात्मकता का अधिकांशः निरूपण करना पड़ता है क्योकि यह पक्ष व्यक्तित्व का भी खुलासा करता है। शैली के अन्तर्गत अन्तः प्रेरणाओं, अर्न्तद्वन्द्वों, मनोभावों का विश्लेषण करना होता है। इसमें मूलतः भाव पक्ष का विवेचन किया जाता है और शिल्प में कला पक्ष समाहित रहता है। निष्कर्षतः शैली आत्मनिष्ठ होती है अर्थात शैली में किसी व्यक्ति की अदा, भंगिमा, रुझान तथा रुचि का पता चलता है। इस अर्थ में रीति शब्द जिसकी आप पहले विवेचना देख चुके है उसमें यह व्यापकता नहीं है।

रीति तो परिपाटी, पंथ, चलन या परम्परागत लेखन अथवा रचनागत वैशिष्ट्य की बोधक होती है जबकि शैली से लेखक के व्यक्तित्व की भी पहचान की जा सकती है। गढ़वाली लोक साहित्य में कथागत शिल्प, काव्यगत शिल्प, नाटक-कहानियों का शिल्प भिन्न-भिन्न है और शैली भी भिन्न-भिन्न है। पवाड़े और जागर, पंडवार्ता की शैली अलग है। लोकगीतों में श्रृंगार और करुणा से युक्त वर्णानात्मक शिल्प की प्रचुरता है। अब हम आपसे गढ़वाली लोककथाओं के शिल्प के विषय में चर्चा करेंगे।

### 12.3.4 गढ़वाली लोककथाओं में शिल्प एवं संवेदना

डा. गोविन्द चातक का कथन है कि, 'जहां तक गढ़वाली लोककथाओं के शिल्प का प्रश्न है, वे सीधी प्रारम्भ होती हैं। पारिचारिक परिचय उनमें मुख्य रूप से आता है। सात भाई, सात रानी, सात कुत्ते, सात बिल्ली। इस प्रकार संख्या में सात को प्रायः प्रयुक्त किसा जाता है। कथा संवादों के द्वारा आगे बढ़ती है। वर्णन की बारीकी और काव्यात्मक वर्णन के लिए उसमें अधिक स्थान नहीं होता। रूप, स्थान आदि का चित्र उतारने के लिए, पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी घटनाओं का आधार केवल कथक (कथा करने वाले) के मुख से होता है। मानव वहां अपने गुण-दोषों के साथ उपस्थित मिलता है। उनमें भले-बुरे सभी तरह के पात्र होते हैं वे अपनी सहज प्रवृत्तियों से प्रेरित मिलते हैं । प्रेम की अश्लील अभिव्यक्ति लोककथाओं में नहीं मिलती। केवल भाषा के सांकेतिक रूप से मर्यादा की रक्षा की जाती है। बीच में ऐसी घटनाएं प्रायः आ जाती है जो आलौकिक होती है। किन्तु वे उत्सुकता को जागरित करने में समर्थ होती है। कथा का अन्त प्रायः सुखान्त होता है और साथ ही उसके साथ नीति वाक्य सम्बद्ध होता है। गढ़वली लोककथाओं के अन्तर्गत वीरगाथाओं का अध्ययन लुप्त इतिहास की श्रृंखला को जोड़ने और उसे पुनःस्मरण कराने का काय करता है।

गढ़वाली लोककथा साहित्य में कहीं नाटकीय संवाद शैली भी दिखती है। जैसे- उदाहरण के लिए यहां हम 'मूर्ख की कथा' का हिन्दी रूपान्तरण दे रहे हैं -

".....इतने में मूर्ख की ससुराल आ गई। उसकी सास ने उससे पूछा-'तुम राजी-खुशी हो'? मूर्ख बोला 'हाँ'

'क्या मेरी लड़की ठीक है'?

वह बोला 'ना'

क्या वह बीमार है ? उसने जवाब दिया 'हाँ'

क्या वह ठीक नहीं हो रही है ?

उसने कहा 'ना'

क्या वह मर गई है ?

मूर्ख बोला 'हाँ'।

मूर्ख की बात सुनकर घर मे सब रोने लगे, जब कि उसकी स्त्री घर में राजी-खुशी थी"।

इसी तरह लोककथाओं में कहीं मुहावरों का प्रयोग तो कहीं काव्यात्मक भाषा, और बिम्ब तथा प्रतीकों के माध्यम से कथा को रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत करने का विधान देखने में आता है। यही कारण है कि वर्णात्मक, मनोविश्लेषण, अर्न्तद्वन्द्व और मानवीय संवेदनाओं से गढ़वाली लोककथा साहित्य ओत-प्रोत है।रहस्य, रोमान्च और हिन्दी के अयारी कथा साहित्य की हल्की प्रतिछाया भी यहां के लोककथा साहित्य पर पड़ी दिखती है।

संस्कृत के पंचतन्त्र और हितोपदेश के प्रभाव और शैली शिल्प को भी गढ़वली लोक कथाकारों ने अपनी शैली में ढालने का प्रयास किया है। काव्य बिम्ब 'इमेज'भी इन कथाओं में यत्र-तत्र झलक जाती है। क्योकि पुराने कथाकारों ने जब लोक में इन लोककथाओं को सृजा या लिखा होगा तब अपनी अनुभूति को तीव्रता देने के लिए उन्होंने भाव और ऐन्द्रिय बिम्बों को भी अपनी कहानी में स्थान दिया होगा। प्रतीकों की भी ये लोककथाकार कैसे अवहेलना कर सकते है। अतः सियार, बाघ, बकरी, आंछरी आदि तब प्रतीक के रूप में इन लोककथाकारों के साहित्य में स्वतः ही अवतरित हुई होगी और अपनी भाषा को व संवेदन को अर्थ देने के लिए उन्हें काव्य बिम्बों और प्रतीकों की मदद लेनी पड़ी होगी। इन्हीं से उनका शिल्प और उनकी शैली सज्जित हुई होगी। कथागत पात्रों के उपदेशों व सन्देशों को लोक तक पहुंचाने में वे सफल रहे होंगे। क्योकि लोककथाओं में यह अनगढ़पन भी लोक को अभिव्यक्ति देता है। यदि इस अनगढ़पन (ग्राम्यत्व) को शिल्प का सहारा दे दिया जाए तो अब भी कथा साहित्य को यथार्थ और कल्पना के पंखों पर उड़ान भरने के लिए तैयार किया जा सकता है।

### 12.3.5 गढ़वाली लोक कथाओं की विशेषताएं

गढ़वाली लोककथाओं में गढ़वाल का लोकमानस बोलता है, उनमें उसक संवेदना और अनुभूतियां बोलती है, यहां के आदिम विश्वास (मिथ) तथा समाज बोलता है। इन कथाओं में लोगों के भावात्मक पक्ष के साथ-साथ उनकी सामाजिक स्थिति, रीति रिवाज और मर्यादाओं का परिचय मिलता है। इनमें कुछ लोककथाएं संवेदना के स्तर पर अत्यधिक उच्चकोटि की है। कुड गढ़वाली लोककथाएं ससुराल के जीवन कर यातनाएं और मायके में विषमता के अन्यायों का बड़ा मार्मिक चित्रण करती है। भाई-बहिन के एक दूसरे के लिए किए गए त्याग, पत्नी का सतीत्व और यौन सम्बन्धों पद इन कथाओं से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इनमें उत्पाथित चचरित्र समाज की बद्ध धारणाओं की ओर संकेत करते है। प्रायः चरित्र व्यक्तिगत कम और वर्गगत अधिक है। ननद और भाभी परस्पर प्रतिद्वन्दी और ईर्ष्यालु दिखाई देती है। भाई-बहिन का स्नेह, आदर्शरूप में इन लोककथाओं में आया है। जैसे- सदेई भाई के दर्शन के लिए पुत्रों की बलि तक

दे देती है। इन लोककथाओं मे मां का रूप अन्यमतम है। प्रायः सास-बहू के झगड़े का कारण पुत्र पत्नी का पक्ष लेते मिलते है, किन्तु माता फिर भी स्नेह को नहीं छोड़ती। मां की यह ममता एक कथा में बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त की गई है। एक पुत्र पत्नी के कारण अपनी माता को मार देता है और रात को उसे गाड़ने के लिए ले जाता है। गड्ढा खोदकर मां को उसमें रखने लगता है तभी भयंकर वर्षा होने का आभास होता है। माता का शव गड्ढे से बोल उठता है- ''हे आकाश! अभी न बरस, मेरे बेटे करे घर जाने दे, तब बरसना''।माता का यह रूप लोककथाओं में अनेक प्रकार से आया है। विमाता (सौतेली मां) बहुत अन्यायी और आततायी मिलती है। सौतिया डाह के अनेक प्रसंग षडयन्त्रों से भरे पड़े है। पत्नी के रूप में नारी को साध्वी और पतिव्रता दिखाया गया है किन्तु पुरुष सदैव ईर्ष्यालु लगता है। सरु और फ्यूंली रौतेली की कथाएं प्रेम के ईष्या समन्वित अवसान को चित्रित करती है। स्त्रियां पति के साथ सती होती इिखाई गई है और विपत्ति में उनके साथ सत से औलोकिक घटनाएं घटित होती होने का उल्लेचा हुए है। चन्द्रावती के सत से उंगली से ही दूध निकलने लगता है और पांच दिन का बालक कुछ ही दिन में युवक हो जाता है। इन गढ़वाली लोककथाओं में मृत पतियों को सत से जिलाने के अनेक उदहारण मिलते है। मातृत्व को प्रतिष्ठित माना गया है। प्रेम-प्रसंगों में कन्याएं बड़ी साहसी होती है। वे अपने परिवार की चिन्ता न कर प्रेमी का अनुसरण करती है। राक्षस कन्याएं तो अपने मानव प्रेमियों को अपने पिताओं को मारने की युक्तियां तक सुझाती है जिससे वे उनके साथ जा सके। ये कथाएं हिडिम्बा और बक जैसी कथा से प्रभावित है। हिडिम्बा भीम से प्रेम करती है और अपने भाई हिडिम्ब को मारने की युक्ति भीम को बताती है। गढ़वाल और जौनसार क्षेत्र में पाण्डवों से प्रभावित सांस्कृतिक एकता मिलती है। यही कारण है कि गढ़वाली लोककथाओं पर पाण्डवों पर घटित हुई कतिपय घटनाओं का वर्णात्मक प्रतिछाया प्राप्त होती है। पाण्डवों की तरह महादेव-पार्वती का उल्लेख गढ़वाल की लोककथाओं में बहुत आया है, उनका निवास किसी पेड़ पर बताया गया है। किसी को विपत्ति में देखकर पार्वती द्रवित हो जाती है। इस कथा के द्वारा नारी की उदारता बताई है। महादेव दया तो कर देते है किन्तु पार्वती की इस दरियादिली करने के लिए गुरु गोरखनाथ की बोक्साडी विद्या (यक्ष विद्या-यक्षिणी) का उल्लेख आया है। महादेव और पार्वती के समान ही गुरु गोरखनाथ भी पात्र की भांति गढ़वाल की लोककथाओं में आए है। चमत्कारों के लिए भूत और अप्सराएं भी उल्लेखनीय है। प्रायः इनकों अनिष्टकारी माना जाता है। किन्तु वे कहीं मानव का हित करते भी मिलते है। पशुओं में शेर, हाथी, लोमड़ी, सियार, भालू, चूहा, और पक्षियों में टिहीवा, कौआ, फाख्ता, कोयल, तीतर विशेष चरित्र है। बिल्ली, चूहा, कौआ, लोमड़ी को बड़ा चतुर माना गया है। चूहा महत्वाकांक्षी और मनुष्य के सहायक के रूप में आया है। बकरी की दुर्बलता और छिपकली का आलस्य प्रसिद्ध है। शेर को गढ़वाल की लोककथाओं में मूर्ख सिद्ध किया गया है।

## गढ़वाली लोक कथाओं का साहित्य

(क) फुलदे राणि- एक बुढ़िया को एक नोन्याल छयो वे अपणि ब्बै मु बोले, ब्वै ई तरह हम भूखा कब तक रौला। मैं कखि परदेश जौलो। वैकी ब्वैन बोले कि परदेश जाईक अब ल्योंदि तू फुलदे राणि। कीक जांदी कखि यख अपनी कोणों त छैच मरण। वे लड़का न पूछे कख छ मां वा फुलदे राणि ? अरि कनि छ वा। मां न बोले बेटा, एक राजा की लड़की छ। वा बड़ी खूबसूरत छ। लेकिन आदमियों की गन्ध समझदी। लड़का न बोले अच्छो मां, मैं परदेश जांदू। मां का समझोण-बुझोण पर भी वैन एक भी नि मनी, चल दिने। चलदो-चलदो वे सणी कई दिन बीति गैन। भूको-प्यासों।

एक दिन रास्ता मा वे सणि चार जोगी आपस मा झगड़ा कर्दा मिलेन। वैन पूछेन- 'भाई तुम क्योंकु छया झगड़ना' ? जोंग्योन बोले ' हम चार गुरुभाई छवां, हमारा गुरु को देहांत होये, अर अब गददी का खातिर झगड़ा पड़िगे। एक बोलदों मैं बैठुलो, दूसरों बोलदो मैं। ये वास्ता तुम यो फैसला किरया'। लड़का न बोले- 'तुम अपणी-अपणी सिद्धि का मन्त्र बता। तब मैं तोलो, जैकों ज्यादा ताकतवर मन्त्र होलो, ओ गददी का मालिक होलो'।पहलो जोगी बोलदो। 'भाई, मन्त्र बतौण लायक त नी छ, पर जब तुम पंच बणाया, तब बोलण ही पड़दी'।एक ने बोले 'मेरा मन्त्र छः- चल मेरी उडण खटोली देश' ! दूसरा न बोलों-'पक-पक'डिबिया भोजन अर सोर करीछि भात'। तीसर न बोलेः 'मार सोटा बांध दो पूड़ी'। चौथन बोलेः-' झड दो खंता सोने चांदी' ।

लड़का न मन्त्र याद करियाले और बोले-'चल मेरी उडण खटोली, फुलदे राणी का देश'लड़का एकदम फुलदे राणी का देश पहुंच गए अर जोगी खौल्या देखण लेग्या। लड़का शहर मा पंहुच्यों। वैन सबसे पहलि 'झड खन्ता'पढ़े, वख मू काफी रुपया झडि गैन। कपड़ा-लत्ता बणाइन लड़का त अब राजाओं की तरह सीजे। काफी रात मा वैन अपणी खटोली याद करे अर फुलदे राणी का महल मा गए, राणी का कमरा मा गए। वैन राणि पर द्वी चपत लगाई। हे तरह ओ काफी दिन चपत मारदो रये। वा लड़की कमजोर बणिगे। एक दिन राजा ने पूछे कि बेटी तु किले सुखणील छे। वीन सारी बात राजा का पास लगाये। राजा न सोचे आज रात मैं भी देखिल्यू, भोल गोलि से मारे जालो। फिर रात लड़का आये और वीकी पलंग सहित उड उईक ल्हीगे। आखिर वी सणी अपण देश ल्ही जान्दो अर अपणी राणी बणोदो।

(ख) देवी-देवताओ पर आधारित लोककथाएं- गंगू रमौला-

टिहरी गढ़वाल की गात है। रमोली गढ़ में गंगू नामक एक प्रसिद्ध जागीरदार था। कुबेर उसका खजांची था और अन्नपूर्णा उसके भण्डार की देखरेख करने वाली थी। इतनी धन-दौलत होते हुए भी वह बहुत परेशान सा रहता था। एक सौ वर्ष की अवस्था में बूढ़ा शरीर, किन्तु सन्तान एक भी नहीं। रानी मीनावती के बार-बार कहने पर भी गंगू को देवी-देवताओं पर भी कोई विश्वास नहीं जमा। उसे अपनेपन का अभिमान था। जीवन में कभी किसी के लिए आदर प्रदर्शित करना उसने कभी सीखा ही नहीं था। भयंकरता में वह चरम सीमा को पार कर चुका था। अपनी प्रजा की भेड़-बकरियों को जबरदस्ती लूट-खासोट क रवह खाया करता था। यहां तक कि अविवाहित

लड़कियों और बांझ भैसों पर भी उसने कर लगा दिया था। लोग उसका नाम सुनते ही कांपने लगते थे। उसके आतंक से सभी दुखी थे। किन्तु कोई चारा न था।

जब कृष्ण को पता लगा तो उन्होंने असके पास सन्देश भेजे और अपनी बात मनवाने के लिए जोर डाला किन्तु गंगू टस से मस न हुआ। अन्त में कृष्ण को द्वारिका छोड़कर ब्राह्मण का वेश बनाकर रमोली हाट जाना पड़ा। गंगू अपनी भेड़-बकरियों को लेकर हरियाली गया हुआ था। हरियाली एक ऐसा चरागाह था जहां नाना प्रकार की औषधियां और जड़ी-बूटियां थी। मीनावती तथा दूसरे लोगों ने जब ब्राह्मण का दिव्य रुप देखा तो सब हैरान रह गए। बाप-रे-बाप ऐसा सौन्दर्य ? रानी के पूछने पर कृष्ण ने बताया कि वह उनका खानदानी ज्योतिषी है और इस समय गंगू की जन्मपत्री देखने आया है कि उसके भाग्य में पुत्र है या नहीं। ब्राह्मण ने जल्दी-जल्दी गंगू के ग्रह देखे, कुछ कहा और फिर अचानक अन्तर्धान हो गया। गंगू जब घर लौटा तो उसकी रानी ने ब्राह्मण की बात सुनाई, किन्तु गंगू ने अपनी रानी को बुरा-भला कहा और ज्योतिषी की बात पर कोई विश्वास नहीं किया। कुछ देर बाद ही उसकी पीठ में भंयकर दर्द होने लगा। देखते ही देखते उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई और सारे अनाज को चीटियाँ चट कर गई। उसकी भेड़-बकरियां एक-एक कर मरने लगी और सारी फसल सूख कर समाप्त हो गई। गंगू ने अपने दुर्भाग्य और अकाल ताण्डव के बारे में अपनी रानी से पूछा कि इसका क्या कारण हो सकता है। रानी ने बताया कि इसका ब्राह्मण का कोप ही हो सकता है।

गंगू का सारा परिवार त्राहि-त्राहि कर रहा थाख् लेकिन उसकी हठ ज्यों की त्यों थी कुछ दिन बाद गंगू ने विचित्र स्वप्न देखा। कृष्ण ने गंगू को काल्या पहाड़ की चोटी पर आने को कहा। गंगू ने कृष्ण से पूछा कि 'तुम कौन हो'? मैं तुम्हारा ईष्ट देवता हूं, कृष्ण ने उत्तर दिया। 'यदि तुम वारणी सीमा में मेरा एक मन्दिर बनवा दोगे तो तुम्हारी सारी धन-दौलत वैसी की वैसी मिल जायेगी'किन्तु गंगू को इस पर विश्वास न हुआ। कहने लगा कि शायद तुम लोगों ने सुना होगा कि मेरी सम्पत्ति समाप्त हो गई। मैं तुम पर तब विश्वास करुंगा जब तुम हिडिम्बा नाम की डायन को मारोगे। कृष्ण ने अपनी मुरली बजाई। मुरली की तानसुनते ही हिडिम्बा दौड़ी-दौड़ी कृष्ण के पास आई और सुन्दर-स्वस्थ कृष्ण को देखकर कहने लगी कि 'ओह, मैं कितने दिन से भूखी थी आज अच्छे मौके पर मुझे खाना मिला'। कृष्ण ने कहा 'पहले हम दोनों अपनी-अपनी ताकत दिखाएं। सामने यह झूला है बारी-बारी से एक दूसरे को झुलाए। देखें कौन ज्यादा झुला सकता है ?। हिडिम्बा तैयार हो गई। पहले कृष्ण झूले पर बैठे। हिडिम्बा ने अपना पूरा जोर लगाया किन्तु वह झूले को हिला तक सकी। अब हिडिम्बा के बैठने की बारी थी। जैसे ही वह झूले पर बैठी, कृष्ण ने उसे इतना उपर उठा दिया कि वह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए। उस समय सारा रमोली गढ़ कांप उठा। जैसे कोई भयंकर भूकम्प आ गया हो। यह देख गंगू ने दो गूंगे कृष्ण के पास भेजे कि देखों की क्या हुआ ?

गूंगे कृष्ण के पास पहुंचते ही बोलने लगे और लौटकर गंगू के पास आये तो उन्होंने सारी कहानी सुनाई फिर भी गंगू को विश्वास नहीं हुआ। अन्त में कृष्ण स्वयं साधु का वेश बनाकर गंगू के यहां गए और खाने के लिए दूध-दही मांगा। गंगू ने उन्हें धक्का देकर निकाल दिया किन्तु मीनावती ने उन्हें खूब दूध-दही खिलाया। साधु ने मीनावती को आर्शीवाद दिया और गंगू को कोढ़ी हो जाने का शाप दिया। कोढ़ी हो जाने पर गंगू टस-से-मस नहीं हुआ। उसने अपनी जिद नहीं छोड़ी। जब गंगू पर इन सब बातों का कोई असर नहीं हुआ तब कृष्ण स्वयं नाग का रुप धारण कर उसकी बिस्तर पर बैठ गए। गंगू चालाक था, उसको नाग का कुछ आभास सा हो गया और वह उस रात चुपचाप बाहर बैठा रहा। अन्त में कृष्ण ने रमोली गढ़ के पानी के सारे स्रोत सुखा दिए। कहीं पानी की एक बूंद भी नहीं रही। पशु-पक्षी सब प्यास के मारे मरते जा रह थे। गंगू गंगा का पानी पीने गया लेकिन वह खून में बदल गया। अब गंगू भी कुछ परेशान सा हो गया। लौटने पर उसने अपनी रानी से पूछा। रानी ने कहा कि किसी पंडित से पूछ लो कि यह सब क्यूं हो रहा है! कोई चारा न था। गंगू ने ज्योतिषियों से पूछा। उन्होंने बताया कि कृष्ण नाराज हो गए है। उनकों मनाने के लिए तुम्हें भूखा-प्यासा रहना होगा। गंगू ने द्वारिका के लिए प्रस्थान किया और वहां पहुंचकर भगवान के चरणों में पड़ गया। कृष्ण ने उसे क्षमा कर 'सद्या'और 'सेम'में मन्दिर बनाने को कहा। गंगू ने सेम में मन्दिर बनवाया, किन्तु मन्दिर पूरा होते ही धरती में समा गया। अब गंगू ने अपने सारे इलाके में जगह-जगह कृष्ण के मन्दिर बनवाए। थोड़े ही दिनों में उसकी सारी खोई सम्पत्ति वापस मिल गई। वह ठीक हो गया और श्रीकृष्ण की कृपा से उसके 'सिदवा'और 'विदवा'दो पुत्र भी हो गए।

## 12.6 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि -

1. लोक कथाएं यहां के लोक को कहां तक अपने में आत्मसात् कर पाई है। इन लोक कथाओं और अन्य प्रदेशों की लोककथाओं में क्या अन्तर है।
2. गढ़वाली की ये लोक कथाएं लोक को क्या संदेश देती हैइनका भाषा स्वरूप तथा कथ्य क्या होता है।
3. गढ़वाली लोक साहित्य कितना पुराना है तथा उसका वर्तमान स्वरूप क्या है।
4. इन लोककथाओं के मूल में कल्पना तत्व के साथ यहां की प्रकृति, मिथ, और इतिहास का कितना धाल-मेल हुआ है।
5. इन लोक कथाओं की मूल प्रवृत्तियां तथा शिल्प की क्या विशेषता है।

## 12.7 शब्दावली

रमौली गढ़ - उत्तराखण्ड के टिहरी जनपद में है। यहां श्रीकृष्ण का सेम-मुखेमनामक प्रख्यात मन्दिर है। प्राचीन साहित्य में इसे रमणक द्वीप भीकहा गया है।

खरसाली - यह स्थान उत्तराखण्ड में यमुनोत्री मार्ग पर है।

साबर की विद्या - सम्मोहन की विद्या।

कन्दूणियें - कान

खुरसानी चीरा - कनफट

पंद्यारा - पानी की धारा

## 12.8 अभ्यास प्रश्न

1. लोककथा से क्या तात्पर्य है ? गढ़वाली लोक कथाओं में किसी एक गढ़वाली लोककथा को हिन्दी भाषा में लिखों।
2. गढ़वाली लोककथाओं की कोई तीन प्रमुख प्रवृत्ति बताइएं।

3. शिल्प से आप क्या समझते है ? शिल्प और शैली में अन्तर बताइए।

4. 'मूर्ख की कथा' के संवाद गढ़वाली में लिखिए।

5. तारादत्त गैरोला ने लोककथाओं का जो विभाजन किया है उसका उल्लेख कीजिए।

6. डा. चातक द्वारा उल्लिखित गढ़वाली लोककथा का वर्गीकरण क्या है ?

7. निम्न लिखित पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिए- बारता, जातककथाएं, सरगदादू पाणि दे, तन्त्र-मन्त्र और जादू टोना वाली कोई एक गढ़वाली लोककथा का सारांश।

8. निम्नलिखित पुस्तकों के लेखकों के नाम बताइये-

   (क) गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना

   (ख) उत्तराखण्ड की लोक कथाएं

   (ग) गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य

   (घ) गढ़वाली लोक कथाएं

   (ड़) गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य

   (च) गढ़वाली लोकगीत विविधा

9. डा. हरिदत्त भट्ट द्वारा उल्लिखित गढ़वाली लोककथाओं की अन्य आठ प्रवृत्तियां कौन सी है ? क्रमश उल्लेख करों।

**अभ्यास प्रश्नों के उत्तर**

प्रश्न-2 का उत्तर- गढ़वाली लोककथाओं की प्रमुख तीन प्रवृत्तियां है-

   (क) कर्मभोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास

   (ख) प्राणों की अन्यत्र प्रतिष्ठा मिलना

   (ग) पछताने की प्रवृत्ति

प्रश्न-3 का उत्तर- शिल्प के अन्तर्गत कला पक्ष समाहित रहता है। यह कथा की या काव्य की बाह्य रूप रचना का कार्य करता है। अन्तरंग तत्व शैली है। शैली के अन्तर्गत जहां अन्तःप्रेरणाओं, अर्न्तद्वन्द्वों और मनोभावों का विवेचन किया जाता है वहीं शिल्प के अन्तर्गत कथ्यसंवादों की रोचकता, सहजता, प्रभावोत्पादकता और अलंकृत वाक्य विन्यास आता है।

शिल्प अपनी विशेषता लिए रहता है। जैसे- गढ़वाली लोककथाओं में सात भाई, सात समुन्द्र, सात कुत्ते, सात बिल्ली। यह सात शब्द (अंक) शिल्प विशेष या (रुढ़ि परम्परा निर्वाह) के कारण प्रयुक्त करना होता है। हम आपको पहले भी निर्दृष्ट कर चुके है कि अभिव्यक्ति के दो पक्ष होते है- एक आन्तरिक, दूसरा बाह्य। यह आन्तरिक पक्ष शैली है और बाह्य पक्ष शिल्प, जिसे सामान्यतः भाषा में आप कला पक्ष कहते है। यही शैली और शिल्प में अन्तर है।

प्रश्न-4 का उत्तर 'मूर्ख की कथा' गढ़वाली भाषा में-

एकदा एक मूरख अपण ससुराल पैट। चलदा-चलदा वे कु ससुराल दिखैण बौढ़िग्या। उ खुश ह्वे ग्या, सासुजी तैं मिलण का बाद सासुल पूछ- हे बाबा तुम राजि खुशी छौ ?

मूरखल ब्वाल- 'हाँ' सासू।

- सासुल पूछ-क्य मोरि नौनि खूब च ?

बैल-ब्वाल 'ना'

- क्य व विभार चा ?

वैल जबाप द्या- 'हाँ'

- क्य व ठीक नि हूणी चा ?

मूर्ख ल ब्वाल- 'ना'

- अरे वय व मोरि ग्याई ?

वैल ब्वाल- 'हाँ'

जबकि घरमा वे कि औरत ठीक-ठाक छाई।

प्रश्न-5 का उत्तर- तारादत्त गैरोला ने लोककथाओं का निम्न विभाजन स्वीकार किया है-

1. वीर गाथाएं
2. परियों की कथाएं
3. पशु-पक्षियों की कथाएं 4. जादू-टोना की कथाएं

प्रश्न-6 का उत्तर- डा. गोविन्द चातक के द्वारा किया गया गढ़वाली लोककथाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित है-

1. देवी-देवताओं की कथाएं
2. परियो, भूतों, चमत्कारों की आश्चर्य व उत्साहवर्धक कथाएं
3. वीरगाथाएं
4. प्रेम कथाएं
5. पशु-पक्षियों की कथाएं
6. जन्मान्तर और परजन्म की कथाएं
7. कारण-निर्देशन की कथाएं
8. लोकोक्ति मूलक कथाएं
9. हास्य (मौर्ख्य) कर कथाएं
10. रूपक अथवा प्रतीक कथाएं
11. नीति अथवा निष्कर्ष गर्भित कथाएं
12. बाल कथाएं

प्रश्न-8 के उत्तर-

(क) गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना-मोहनलाल बाबुलकर

(ख) उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक

(ग) गढ़वाली भाषा औा उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'

(घ) गढ़वाली लोक कथाएं- डा. गोविन्द चातक

(ड़) गढ़वाली काव्य का उद्भव और विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला

(च) गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक

प्रश्न-9 का उत्तर- डा. हरिदत्त भट्ट उल्लिखित गढ़वाली लोककथाओं की अन्य आठ प्रवृत्तियां निम्नलिखित हैं।

1. ईश्वर, धर्म और भाग्य पर अटूट विश्वास।
2. सास का बहू पर घोर अत्याचार।
3. सौतेली मां का दुर्व्यवहार
4. बहन और पत्नी का स्वार्थी रूप।
5. बोक्सा विद्या द्वारा परिस्थिति के अनुसार शरीर (चोला) का परिवर्तन।
6. साधु-सन्यासियों के कथन में विशेष अनुभव की स्थिति।
7. सपनों की अजीब सृष्टि।
8. स्त्रियों में सतीत्व रक्षा के लिए साहसिक कार्य करने की प्रवृत्ति।

## 12.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. गढ़वाली लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

7. धुंयाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, गढ़वाली भाषा परिषद, देहरादून, संस्करण अगस्त 1983


## 12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लोककथाओ से आप क्या समझते हैं? गढ़वाली लोक कथाओं के स्वरूप पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।
2. गढ़वाली लोककथाओं का वर्गीकरण करते हुए उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों का विश्लेषण कीजिए।

# इकाई 13 गढ़वाली लोक साहित्यः अन्य प्रवृत्तियां

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां
13.3.1 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां
13.3.2 गढ़वाली लोकगीतों अन्य प्रवृत्तियां
13.4 सारांश
13.5 अभ्यास प्रश्न
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 13.1 प्रस्तावना

गढ़वाली लोक साहित्य अब लगातार अनुसंधान और विवेचना का विषय बनता जा रहा है। उत्तराखण्ड भाषा संस्थान की स्थापना के बाद उत्तराखण्डी साहित्य का प्रकाशन एवं उस पर विचार चर्चा और शोध समीक्षण का कार्य लगातार चल रहा है। नए लेखक नई तरह से लोक साहित्य पर अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं। अन्य प्रान्तीय भाषाओं (लोक भाषाओं) का तुलनात्मक अध्ययन भी जोरों पर है। भाषिक तत्वों तथा लोकतत्वों और सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से भी लोक साहित्य की विवेचना की जाने लगी है। अब लोक गाथा, लोक गीत, और लोक में व्याप्त मिथक (लोक विश्वास) पर नए मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से विश्लेषण करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। इस प्रकार के अध्ययन से गढ़वाल क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत, उसके प्रभाव और विकास का पता चलता है। गढ़वाली लोक साहित्य की प्रवृत्तियां का पूर्व के पाठों और इकाईयों में भी दिक् दर्शन किया जा चुका है।

## 13.2 उद्देश्य

इस इकाई का विधिवत् अध्ययन करने के पश्चात आप

1. खण्डकाव्य एवं महाकाव्य की अधुनातन नूतन प्रवृत्तियां जान सकेंगे

2. गीतिकाव्य एवं संवाद काव्यों की अन्य प्रवृत्तियां जान सकेगें

3. नाटक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां, तथा पुराने नाटक साहित्य की प्रवृत्तियों में मूलभूत अन्तर की पहचान कर सकेंगे।

4. कथा (कहानी) की अन्य प्रवृत्तियां पहचान सकेंगे।

5. लोकगीत एवं गाथागीतों की अन्य प्रवृत्तियां जान सकेंगे।

6. प्राचीन लोक साहित्य विशेषकर आधुनिक काव्य में कलापक्ष एवं भाव पक्ष में हुए परिवर्तन को जान सकेंगे।

## 13.3 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां

### 19.3.1 गढ़वाली लोक साहित्य की अन्य प्रवृत्तियां

गढ़वाली लोक साहित्य की विधाओं की पृथक-पृथक प्रवृत्तियों का आप पूर्व में भी अध्ययन कर चुके हैं। गढ़वाली लोक साहित्य की कुछ अन्य प्रवृत्तियां निम्नवत हैं-

1. काव्य तत्वों में रस की प्रधानता जैसे- गढ़वाली वीरगाथाओं (पवाड़ो) में वीर, श्रृंगार और करुणा तथा अद्भुत रस की प्रमुखता है। रणू रौत का पवाड़ा उदाहरणार्थ प्रस्तुत है-

वीर रस-राजा को आदेस् पैक रौत चलीगे, माल की दूण कुई माल बोदा-

ये तैं चुखनी चुण्डला आंगूली मारला। तब छेत्री को हंकार चढ़े रौत,

मारे तैन मछुली-सी उफाट, छोड़े उड़ाल तरवार।

तैन मुण्डू का चौंरा लगैन, तैन खूनन घट्ट रिंगैन मरदो,

तै माई मर्द का चेलान मरदो। सी केला सी कच्चैन, गोदड़ा सी फाडीन।

बैरी को नी रखं एक, ऋणना को-सी शेष।

श्रृंगार रस-झंकरु होतो मातो उदमातो, राणियों को रौसियों होलो वो, फूलू को हौसिया

रणू रौत की बौराणी भिमला पर, वैकी लगी छै आंखी।

रणू तै जुद्ध मा जायूं सुणीक, वो चली आये भिमला का पास।

करुण रस- करुण रस का यह निम्नोक्त उदाहरण कालू भण्डारी के पवाड़े से उद्धृत किया जा रहा है।

रोये बराये तब राणी ध्यानमाला, भटके जने ऊखडुं सी माछी।

मैं क तैं पायूं सोहाग हरचें, मैंक तैं मांगी भीख खतेण

कनो मैंक तैं मांगी तई दैव रुठे ? रखे दैणी जंगा पर वींन कालू को सिर

बाई जांग पर धरे वो रुपू गैंगसारो। रौंदी बरांदी चढ़े चिता ऐंच

सती होई गए तब ध्यानमाला!

2. मानवीकरण की प्रवृत्ति- हाथी, शेर, गीदड़ भी मनुष्य जैसे बोलते और आचरण करते दिखाए गए हैं।

3. अलंकार- रुपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग रुपाकृति वर्णन में अतिशयोक्ति की अतिरंजना, वीर भड़ों के शारीरिक सौष्ठव एवं पराक्रम वर्णन में, सुन्दरियों के देहाकर्षण में सर्वत्र दृश्यमान है। उदाहरणार्थ- कवि कन्हैयालाल डंडरियाल के अॅज्वाल कविता संग्रह की उल्यरु जिकुडी कविता में आये अलंकारों के विविध बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रस्तुत है-

स्यूंद सी सैण मा की कूल, स्वाति की बूंद सी ढ्वलीने

झुमकि सी तुड़तुड़ी मंगरि, मखमलि हरि सी अंगडि

फील्वर्यू हलकदी धौपंली, घुंगटी सी लौकदि कुयेड़ी

उपर्युक्त पद्य में समतल खेतों की गूल को मांग के सदृश, आंसू को स्वाति के बूंद, पानी को पतली धारा को झुमकों, हरे मैदानों को अंगड़ी, और उड़ते कोहरे की चादर को घूघंट के समान बताकर कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है। भूम्याल महाकाव्य में कविवर नागेन्द्र बहुगुणा 'अबोध बन्धु'की उपमाएं उनके अलंकृत कवि होने के प्रमाण है।

डांडा को क्वी तरुण हाथी सी लग्यूं मस्त बाटा

हर तर्प बटि सुन्दरता हृदय मा, बौला को पाणि सी कगार कटणि

हिरणी की बच्ची सी कुंगलि चिफली भरी नि सकणि हो चौकड़ी ज्वा

म्वारी सी माधुर्य भरीं च गूंगी चखुली सी ज्वा टुपरि उड़ नि सकदी

इन पंक्तियों में रास्ते में चलते तरुण हाथी के समान जीतू के मन में, भरणा की सुन्दरता ऐसे समा रही है जैसे गूल के किनारों की मिट्टी काटती बारीक पानी की धारा, जीतू की गोद में समर्पित भरणा हिरणी की कोमल बच्ची, मधुभरी मधुमक्खी, या आकर्षक चिड़िया के समान दिखाई दे रही है। उक्त पद्य में मालोपमा अलंकार है। उमाल के कवि प्रेमलाल भट्ट ने भी कुछ ऐसी ही उपमाओं को काव्य में अपनाया है।

मिथे उर्ख्यला की धाण सी, क्वी धौलि गै क्वी कूटि गै

निनि बोतल को नशा सी मैं, कखि कोणा लमड्यूं रैगयूं

कखि प्रीत क्वी मिलि छई, नौनो का बांठा कि भत्ति सी,

फुंड फेकि द्यो ये समाज न, मि फुकीं चिलम को तमाखु सी

इन पंक्तियों में कवि ने सामाजिक ज्यादतियों को ओखली में कूटे जाने के समान, खाली बोतल या जले हुए तम्बाकू की चुटकी के समान निरर्थक तथा प्रीत को बच्चे के हिस्से की खीर के समान नई उपमाएं दी है।

4. नए प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति- आधुनिक समय के सुप्रसिद्ध गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी ने अपने गीतों में प्रतीकों को चुना है। उन्होंने जिन प्रतीकों को चुना वें लोक जीवन अथवा लोकभाषा में प्रचलित है। जैसे- उकाल-उंदार गीत में उकाल जीवन संघर्ष और उंदार आसान या पतनोत्मुख जीवन के प्रतीक है। 'हौसिया-गीत' में बसगल्या न्यार, पोडमा को पाणी, धार मा को बथौं, झ्यूतू तेरी जमादरी में झ्यूतू शक्ति या राजसत्ता का प्रतीक, अंगूठा घिसै- अनपढ़ तथा लटुली फूली गैनि गीत में पके हुए बाल समय गुजर जाने के प्रतीक है। कवि के गीत संग्रह गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत है जिनमें गढ़वाली प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई देती है-

खैरि का अंधेरों मा खुज्ययुं बाटु

सुख का उज्याला मा बिरड़ि गयूं

आंखा बूजिकि खुलदिन गेड़

आंखा खोलिकि अलझि गयूं

उमर भप्ये की बादल बणिगें

उड़दा बादल हेर्दि रयूं।

ज्वानि मा जर सी हैंसी खते छै

उमर भर आंसू टिप्दि रयूं

रुप का फेंण मा सिंवाल नि देखी

खस्स रौडू अर रडद्वदि गयूं

इन पंक्तियों में अंधेरा- परेशानी का, उजाला सुख का, गेड-मानसिक गुत्थी का, उलझना- परेशानी में पड़ना, बादल- बुढ़ापा का, हंसी- खुशी का, आंसू-दुख का, फेण- रुप की चमक तथा सिंवालु- (कायी) आकर्षण मन्द पड़ने का प्रतीक है।

5. हिन्दी साहित्य के अनुसरण की प्रवृत्ति- गढ़वाली लोक साहित्य हिन्दी साहित्य से प्रभावित हुआ है। पवाड़ों में और गढ़वाली वीरगाथाओं में हिन्दी का प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दी वीरगाथा काव्य के कवियों ने राजाओं की वंशावलियों और युद्धों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। तो गढ़वाली पवाड़ों में भी लोक नायकों/भड़ों की वीरता का लोमहर्षक वर्णन मिलता है। जगदेव पंवार, गढू सुम्याल, सूरिजनाग, कालू भण्डारी, रिखोला लोदी, माधो सिंह भण्डारी, तीलू रौतेली आदि अनेक पवाड़ों के गाथा तत्व हिन्दी वीरगाथाओं से मिलते है। गढ़वाली की प्रणय गाथाओं/जीतू बगड़वाल, फ्यूंली रौतेली, राजुला मालूसाही, गजू मलारी आदि में हिन्दी प्रेम आख्यान परम्परा की प्रवृत्ति दिखाई दे

पुरानी गढ़वाली लोक गीत कर बानगी बदली सी प्रतीत होने लगी है। यह उर्दू गीति विद्या की भी प्रभाव मानी जा सकती है।

6. प्रकृति चेतना और पर्यावरणीय चिन्ताओं के वर्णन की प्रवृत्ति- गढ़वाली लोक साहित्य के कवियों ने प्राकृतिक वनस्पतियों एवं रमणीय स्थलों की सुरक्षा, नदियों की पवित्रता बनाए रखने और प्राकृतिक संसाधानो के बेतहाशा दोहन का कविता लिख करके विरोध जताया है। कवि भजन सिंह 'सिंह'ने सिंह सतसई में पंचायती न वृक्षारोपण कविताओं में सरकारी नियंत्रण का विरोध जतलाया है। कवि हीरालाल उनियाल, सायर सुरेन्द्र (चिन्मय सायर), और गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी की कविताओं में पर्यावरणीय चिन्ताएं दृष्टिगत होती है। नरेन्द्र सिंह नेगी के डाल्यूना काटा, डांड्यू की विपदा, जिदेरी घसेरी, डाली रोया, गंगाजी और डाम का खातिर गीतों में प्रकृति वेदना तथा जन पीड़ाओं और समस्याओं के स्वर सार्वजनिक होते है। उनके डाम का खातिर गीत पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध भी लगाया गया था।। इस गीत का एक बन्ध आपके अध्ययन हेतु उद्धृत किया गया है-

अबारी दा तू लम्बी छुटटी लेकी ऐई, ऐगी बगत आखीर

टीरी डूबण लग्यूं छ बेटा, डाम का खातिर।

गीतकार नरेन्द सिंह नेगी के गीत श्रोता और पाठकों के मन में आह्लादक बिन्दु प्रस्तुत करते है। उनके गीत बसन्त ऐगे में प्रकृति के मानवीकरण के साथ-साथ जीवन के उल्लास का सजीव चित्रण निम्नवत् किया गया है-

रुणुक-झुणुक ऋतु बसन्ति गीत लगांदि ऐगे,

बसंत ऐगे हमार डांडा सार्यू मा

ठुमुक-ठुमुक गुंदक्यली खुट्यून हिटी की ऐगे,

बसन्त ऐगे लिपीं पोतीं डिंडल्यूं मा।

मुखड्यूं मा हैसणू च पिंगलू मौल्यार,

गल्वड्यूं मा सुलगै गे ललंगा अंगार

आंख्यूं मा चूमाण सुपिन्या बसन्ती

उल्रया जिकुड्यूं मा छलकेणू प्यार

सिंणका सूत कुंगलि कंदुड़ि- नकुड्यूं मा पैरेगे

बसन्त ऐगे हमार गांदी चौठ्यू मा।

अर्थात- बसन्त रुणक-झुणक की अदा के साथ गीत गाता आ रहा है। वह डांडा की सारियों में ठुमक-ठुमक का गोल मटोल गुदगुदे पैरों से चलकर आ रहा है, गांव के लिपे-पुते साफ-सुथरे घर द्वार में असन्त पहुंच गया है। वह सुन्दरियों के गोरे मुखों और लाल गालों पर छा गया है। उनकी आंखों से बसन्ती सपने टपकने लगे है। उल्लसित हृदयों में प्यार उमड़ आया है। बसन्त नव कोमल किशोरियों के नाक कानों को गोदकर सिणके और सूत के रुप में विराजमान है। प्रकृति को आधार बनाकर गिरीश सुन्दरियाल ने भी अनेक गीतों की रचना की है। उनके प्रसिद्ध प्रयाण गीत में प्रकृति का सौन्दर्य निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है-

झल-उज्यालों झप- अंध्यारों कब तै रैंण सारै-सार,

चल भुला अब मार फाल क्या जग्वल्दी उदंकार।

बाटो यो क्वी सौंगू नी द तू भी इतना जाणि ले

जिन्दगी छ खड़ि उकाल यीं उकाल ताणि ले

जिन्दगी की असलियत तैं धार पैंछी देखि ले

यीं तरफ छ दुःख अथाह अर वीं तरफ सुख जाणि ले।

नये प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करने वाले दूसरे प्रमुख कवि चिन्मय सायर है। उनकी कविताओं का शिल्प कथन भंगिमा, और प्रतीक अन्य कवियों से भिन्न है। सायर के काव्य की कृछ प्रतीक प्रस्तुत किए जा रहे है।

- मेरि कविता/निल्ल-चिल्ल भ्यटग्यां दुखों की/नौणी शिलाजीत
- मेरि कविता/सड़की तीर/खड्डु सिगनल
- बिन फूलौं फल नी हूंद/पर तू ह्वेगे/तिमला फूल
- बेथ भी जिन्दगी/हाथ भर दुःख

कमेड़ा आखर कविता संग्रह की रचियता बीना बेंजवाल की रचनाओं में पर्वतीय पारी के प्रतीक बांजा-पुंगड़ा (पर्वतीय कृषि की उपेक्षा का प्रतीक), भमाण पाखा (जीवन के नीरस दिन), माला-पोथी (अबोध बालिका का प्रतीक) और कुंगला पंखुड़ (कोमलइ भावनाओं का प्रतीक) है। दैसत काव्य के रचियता अबोध बन्धु की कविताएं प्रतीकात्मक है। जिसमें कवि ने राजनीतिक षडयन्त्र, शोषण और काले कारनामों वाले नेताओं के द्वारा संचालित लोकतन्त्र का मखौल प्रतीकात्मक भाषा में किया है। एक उदाहरण दृष्ट्व्य है -

हे सर्प-पुत्र ! असल संपैणी का बच्चा

हे तड़कौण्यां डंड्वाक ! कंठ जहर की कुटरी वाला।

औ ये सिंहासन मा बिराज, हम पर राज चलौ

हम पीढ्यूंक का गुलाम त्यारा ताबेदार छवां

हां हम लूला-लंगड़ा, काणा, पड़मुताड़ छवां

उजर नि करदा, सेवा धर्म निभाणां जणदां

पैलि कखड़ी की राली रज्जा का नौ की

बणी रओ या मरजाद हमारा गौं की।

7. गढ़वाली और हिन्दी मिश्रित भाषा प्रयोग की प्रवृत्ति- गढ़वाली के महाकवि कन्हैयालाल डंडरियाल की कविताओं में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। इससे उनकी हास्य-

व्यंग्य रचनाएं और अधिक पैनी और धारदार बन गई है। डंडरियाल जी की कबि पाड़ नि जौं कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही है-

छिन दीवा का सौं कबि पाड़ नि जौं,

मैं तो कांड्यों के बीच उलझ जाऊंगी।

कबि उकलि उबैं, कबि उंधरि उदैं

मेरि खुट्टि रड़ैगी लगड़ जाऊंगी।

अर्थात- मुझे दीवा-देवी की सौगन्ध है मैं कभी भी पहाड़ में नहीं जाऊंगी। यदि गई तो मैं वहां उगे कांटों के बीच में फंस जाउंगी। उस पहाड़ में तो कभी ऊपर और कभी नीचे चलना पड़ता है। यदि कहीं मेरे पैर फिसल गए तो मैं गिर जाऊंगी।

8. गढ़वाली लोकगाथाएं अन्य प्रवृत्तियां

इन लोकगाथाओं का अध्ययन करने से गढ़वाली लोकमानस की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों का पता चलता है, कि यथार्थ जीवन से संवद्ध होने पर भी इनमें अमिानव और अतिप्राकृत तत्वों की भरमार है। जो कि तत्कालीन लोक में प्रचलित अंधविश्वासों, अनुष्ठानों, मनःस्थितियों और कथानक कर रुढ़ि पर निर्भर करता है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरुप गढ़वाली पवाड़ों में देवताओं, अप्सराओं, पशुओं तथा विभिन्न क्रिया व्यापारों के प्रति अति प्राकृत धारणाएं मिलती है। जिसमें पिता की संतान नहीं होती वह देवताओं की कृपा से संतान पाता है। वीर का पुत्र वीर ही होता है। ‘‘जिसके पिता ने तलवार मारी है उसका पुत्र भी तलवार मारेगा’’यह लोकविश्वास इन गाथाओं में चरम पर है, भड़ों की जीवन युद्धों में बीतता है। ये राजा के आदेश का पालन करते दिखते है। भड़ और उसकी सेना दोनों एक साथ मिलकर शत्रु पर टूटते है। भड़ की मां और पत्नी को अपने महल या भड़ के युद्ध में घायल होने, मारे जाने एवं बन्दी बनाए जाने वाले अनिष्ट का पूर्व ही भान हो जाता है। मां के स्तनों से दूध बहने लगता है, पत्नी को अशुभ स्वप्न होता है या संकेत मिलते है। सतीत्व पर जोर मिलता है। सतीत्व रक्षा की वृत्ति पंवाड़ो में रुढ़ि से आई है।

कालू भण्डारी के पंवाड़ें में युद्ध में जाते हुए पुत्र आनी माता से पूछता है कि मां सच-सच बता कि मैं अपने पिता की ही पुत्र हूं। तभी युद्ध में जाउंगा। ‘‘दो की जाई और एक की जाई होना’’अर्थात एक ही व्यक्ति की पति के रुप में स्वीकारने वाली ‘‘दो पुत्रों की माता’’होना सती स्त्री का लक्षण माना जाता था। अपने सत (सतीत्व) का स्मरण कराकर माताएं अपने पुत्रों को युद्ध में भेजती थी। उदहारणार्थ- विरमा डोटियाली अपने पिता को पुत्री होने को विजय से जोड़ती है, वह कहती है ‘‘यदि हम सातों बहिने आपकी पुत्री होंगी तो हमें युद्ध में विजय मिलेगी। इन बातों से यह संकेत मिलता है कि जारज सन्तान युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होगी। वीर माताएं अपने सत के कारण अपने पुत्रों की अभीष्ट प्राप्ति (इच्छा सिद्धि) में सहायक होती थी। गढ़ू सुमरियाल

की वीरगाथा में उसकी माता इसी प्रकार उसकी सहायक होती है। माताओं के साथ गाथाओं की एक और प्रवृत्ति यह भी है कि पत्नी अपने सत (पतिव्रत्य) के बल पर मृत पति को जीवित करती हई दिखाई गई है। इन गाथाओं में असम्भव की सिद्धि के लिए सत्य को ललकारा गया है। सत्य ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति से प्रकट होकर असम्भव को सम्भव बनाकर चमत्कृत कर डालता है। कभी-कभी इष्ट देवी स्वप्न में आकर बाधाएं दूर करती है और प्रेमी वीर पुरुष अपनी प्रमिका की डोली लेकर सारी बाधाएं पार करके अपने घर लौटते है सा स्नान कराते हुए को शत्रु या शत्रु का सिपाही उन्हें धोखे से मार डालता है। लोदी रिखोला, कालू भण्डारी हिंडवाण आदि के साथ ऐसा ही धोखा होता है। ऐसी स्थिति में स्त्री सती हो जाती है। किसी पवाड़े में स्त्री पति और प्रेमी को दाहिनी और बाईं जांघ पर रुख कर उनके साथ सती हो जाती है। किन्तु जहां डोली घर सकुशल पहुंच जाती है वहां स्त्री (प्रेमिका) को दोहद की इच्छा होती है। फलतः पति शिकार के लिए जंगल में जाता है और मारा जाता है। षडयन्त्र प्रायः यभी पवाड़ों में मिलता है किन्तु सतीत्व की रक्षा वर्णन प्रायः पवाड़ों में काव्यमय ढंग से किया गया मिलता है। इस सौन्दर्य वर्णन में सुन्दरियों के लिए चुन-चुनकर उपमान संजोए गए है। ध्यानमाला, शोभनी, सरुकुमैण, जोगमाला सब के अद्भुत रुप सौन्दर्य का वर्णन, उनके नाक, मुंह, आंख, कमर आदि को लेकर भुजाएं और बलिष्ठ शरीर को लेकर किया मिलता है। युद्धस्थल पर उनकी वीरता का वर्णन मुहावरों और लोकोक्तियों तथा लक्षणा शब्द शक्ति के माध्यम से किया हुआ मिलता है जैसे- उन्होंने शत्रुओं को कचालू सा काट डाला। मुंडों से चबूतरे खड़े कर दिए, लहू के घराट चला दिए। वहां उन्होंने भांग बोना शुरु कर दिया। लोकगाथा में वीर मल्ल सा भड़ ऐसा चमत्कार व पराक्रम अपनी इष्ट देवी झाली माली, ज्वाल्पा, कैलापीर आदि की कृपा से करते वर्णित किए गए है। भड़ों पर शिव-पार्वती की कृपा का भी वर्णन भी कुछ पवाड़ों में मिलता है।

तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग भी इन लोकगाथाओं की प्रमुख प्रवृत्ति मानी जा सकती है। विशेषकर सबसे अधिक उल्लेख गुरु गोरखनाथ और उनकी बोक्साडी विद्या का हुआ है। 'धौला उड्यारी'का उल्लेख पंवाड़ों में मिलता है। कहा जाता है यहां सत्यनाथ ने और गोरख ने तपस्या की थी, देवलगड़ में सत्यनाथ का मन्दिर है और उसकों लेकर राजा अजयपाल के सम्बन्ध में अनेक कथाएं/अनुश्रुतिया मिलती है। अजयपाल स्वयं नाथपंथ में दीक्षित था। उसकी वाणी भी नाथों की वाणी और मन्त्रों में शामिल है। श्रीनगर गढ़वाल के नाथों का मौहलला अब तक मौजूद है। पवाड़ों (वीरगाथाओं) में नाथों की बभूति, धूनी, कांवर की जड़ी, चिभटा, खरुवा (राख) की झोली, गुदड़ी, खुराशानी, बाघम्बरी आसन, अमृत की तुम्बी आदि सामग्री का उल्लेख मिलता है। उनकी तन्त्र विद्या को बोक्साडी लोग जादू-टोना के रुप में आजतक जीवित रखे हुए है। बोक्सा तराई की एक जाति है। सम्भवतः कभी वें इस विद्या के जानकार रहे हो। राजुला मालूसाही में जादूगरनी स्त्रियों का भी उल्लेख मिलता है।

इन गढ़वाली लोकगाथाओं की एक और प्रवृत्ति की ओर हम आपका ध्यान ले जाना चाहेंगे, वह प्रवृत्ति है, बाल्यकाल में विवाह का तय होना और फिर उसे भूल जाना तथा अचानक कन्या द्वारा

युवावस्था में पर्दापण करने पर प्रेम का अनुभव करना, या अपने मंगेतर अथवा वाक्दत्ता को स्मरण करना उसे पाने की इच्छा करना। राजुला मालूसाही की लोकगाथा में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। राजुला मालूसाही की गाथा हम आपकी जानकारी के लिए आगे प्रस्तुत करेंगे।। इन वीर गाथाओं में जिनमें प्रेमगाथा का भी पुट रहता है। गायक लम्बी लय में गाते है जिसे पवाड़ा लय विशेष कहा जाता है। इन में आलाप के लिए प्रायः 'हे'ध्वनि का प्लुत रुप में प्रयोग में लाया जाता है। चूंकि ये गाथाएं श्रोताओं (सुनने वालों) का सम्बोधित होती है, इसीलिए इनमें कहीं-कहीं 'मर्दो' 'महाराज'सुणदी सभाई आदि सम्बोधन प्रयुक्त होते है। आरम्भ में तो मंगलाचरण जैसी कोई चीज होती है या किसी का वंशगत परिचय होता है। कहीं भूमिका के तौर पर 'माई मर्दान का चेला, सिहणी का जाया', 'मर्द मरी जांदा, बोल रई जांदा'जैसे विरुद का प्रयोग होता है। कभी वीरगाथा सा पवाड़ा सुनाने वाला आवजी श्रोता की प्रशंसा उसकी वंशावली के साथ दान की महिमा को मंगलवार के रुप में बखान करता जाता है। अधिकांश लोकगाथात्मक पवाड़ों का अन्त स्त्री के सती होने विवरण के साथ होता है। मिलन की स्थिति में मंगल बधाई बजती है। त्रासद परिणित में हुतात्मा के शौर्य को सराहना के सज्ञथ पवाड़े का अन्त किया जाता है। ऐसी स्थिति में पवाड़े में वर्णित होता है। कि मां भड़ को अभीष्ट कार्य करने के लिए मना कर रही है लेकिन पुत्र युद्ध या अपनी इच्छा की जबरदस्ती पूर्ति के लिए मां की बात की अनसुनी करके निकल पड़ता है लेकिन फिर अपशकुन होने के कारण या तो मारा जाता है या बन्दी बना दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यह माना जाता है कि अमुख भड़ या मल्ल ने अपनी मां का कहना नहीं माना था। इसीलिए उसके साथ अपशकुन हुआ। जीतू का गाथा इसका उदहारण है। वीरगाथाओं में आपको इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ये गाथाएं सा पवाड़े इतिहास नहीं है। ये इतिहास सांकेतिक गाथाएं है और इस इतिहास सामग्री में भी कल्पना और पुनरावृत्ति मिलती है। लेकिन इतिहास लेखन में उनसे कहीं-कहीं सहायता मिल सकती है। इन लोकगाथाओं में मध्ययुगीन सांस्कृतिक तत्वों की बहुलता मिलती है। नारी के लिए युद्ध करना, और उसे पाने के लिए प्राणों की बाजी लगाना मृत्यु से भयभीत न होकर युद्धभूमि में या संकट में पराक्रम दिखाना पवाड़ों में दिए एक नैतिक संदेश को उजागर करता है। गढ़वाली वीरगाथाओं (पवाड़ों) के ऐतिहासिक पात्रों को मानशाह (1555-1765) महीपत शाह (1584-1610) और फतेहशाह(1671-1765) आदि राजाओं का इतिहास सम्मत वर्णन प्राप्त होता है। राज्य के अधिकारियों में पुरिया नैथानी, शंकर डोभाल, पांच भाई कठैत, रामा धरणी और राजमाताओं में प्रदीपशाह की संरक्षिका के शासन काल राणी राज के कालखंड की घटनाएं, गोरखा आक्रमण, मुगल आक्रमण आदि की इतिहास संकेतिक जानकारी इन वीरगाथाओं में मिलती है। वस्तुतः गढ़वाल में प्रचलित ये लोकगाथाएं गढ़वीरों व भड़ों की वीर श्रृंगार और करुण रस से भरी काव्यात्मक गेय विरुदावलियां है। जिन पर राजस्थानी शौर्य गाथाओं की भी प्रभाव दिखता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मण्यकाल में अनेक क्षत्रिय जातियां, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र से गढ़वाल उत्तराखण्ड में आकर बसी थी। अतः अपनी संस्कृति और पूर्वजों की थाती

को उन्होंने इस प्रकार के विरुदगानों (पवाड़ों) में और जागरों में पीढ़ी दर पीढ़ी आपने 'आवजी', ढोलवादकों, जागरियों और पुजारियों के माध्यम के सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

### 19.3.2 गढ़वाली लोकगीतों अन्य प्रवृत्तियां

1. संगीतात्मक- गढ़वाल के गाथागीत गेय और छन्दबद्ध होते है। गेय होना लोक गाथा गीत की प्रमुख विशेषता है। इसके सम्बन्ध में डा. प्रयाग जोशी का कथन है कि ''गाथा की रंगत गाने में है, कहने में नहीं''गायन की परिपाटियां (लोकधुने) लोक में पीढ़ियों से निर्धारित है। उसमें सहजता और सरलता लाना लोक गायकों का अपना व्यक्तिगत गुण है। यहां तक कि गाथा का अर्थ समझे बिना भी मात्र लय के आधार पर करुणा, श्रृंगार, वीर और अन्य भावों की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। गाथागायन में अधिकांशत रुप से गायक किसी न किसी वाद्य प्रयोग करता है। राग-रागिणियों की शास्त्रीय विशेषताओं से परिचित न होन पर भी गाथागायकों का स्वर सधा हुआ रहता है।''इससे प्रतीत होता है कि रचना-विधान के लचीले होने के कारण भी लोकगाथा गीत को इच्छित राग में ढाला जा सकता है। गढ़वाल के लोकगीतों में संगीत के साथ-साथ नृत्य का भी विधान मिलता है"।

2. टेकपद की पुनरावृत्ति- लोकगाथा गीतों की सबसे बड़ी विशेषता टेकपद की पुनरावृत्ति मानी जाती है। डा. उपाध्याय का मानना है कि गीतों की जितनी बार दुहराया जाए उतना ही उनमें आनन्द आता है। इन टेक पदों की आवृत्ति से गीत अत्यधिक संगीतात्मक होकर श्रोताओं को आनन्द प्रदान करते है। उदहारण के लिए पांडव गीत गाथा का एक गाथा गीत प्रस्तुत है-

''कोंती माता सुपिन ह्वे गए, ताछुम, ताछुम

ओडू-नोडू आवा मेरा पांच पंडऊ, ताछुम, ताछुम

तुम जावा पंडऊ गैंडा की खोज, ताछुम, ताछुम

सरादक चैंद गैंडा की खाल, ताछुम, ताछुम"।

समूह में गाए जाने वाले गाथा गीतों में गायक जब एक कड़ी गाता है, तो समूह के लोग टेकपद को दुहराते हैं। पुनः पुनः टेकपद की आवृत्ति से श्रोता गीत के भाव को समग्रता के साथ ग्रहण करने में सक्षम होता है।

3. दीर्धकथानक- लोकगाथा गीत का आरम्भिक रुप चाहे जैसा भी रहा हो, कालान्तर में उनके कथानक दीर्ध होते गए, इसका कारण यह भी है ये गाथाएं अतीत में श्रुतिपरम्परा के आधार पर एक गायक ये दूसरी तथा दूसरी से तीसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती रही हैं। हस्तान्तरण के इस क्रम में मूल गाथा गीत के रुप के स्वरुप में कितना परिवर्तन होता है। इसे कहना कठिन है। लोकगाथा द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों के साथ पौराणिक आख्यानों को जोड़कर

गाथा में प्रस्तुत कर देने से उनमें अमानवीय तथा पराप्राकृतिक तत्वों का समावेश हो गया, मूल गाथा के स्वरुप में इससे परिवर्तन तो आया ही उसका विस्तार भी हो गया। इस तरह लोकगाथा गीतों का कलेवर बढ़ता रहा है, और अतिशयोक्तियां भी इन गीतों के वर्ण्य विषयों की मूल आवश्यकता बन गई।

4. जनभाषा का प्रयोग- लोकगाथा की भाषा चिर नूतन रहती है। इसकी भाषा लोकगाथा के जीवन्त रूप का प्रतिनिधित्व करती है। लोकगाथा गीतों का प्रचार-प्रसार मौखिक परम्परा से होता है। अतः इस परम्परा में अप्रचलित शब्दों के स्थान पर गायक प्रचलित शब्दों का प्रयोग सहज भाव से करता है। गढ़वाल के लोकगाथा गीतों में गढ़वाली भाषा-बोली की मिठास गाथागायन में सर्वत्र मिलती है।

5. स्थानीय विशेषताएं- लोकगाथा गीत स्थान विशेष की संस्कृति और उसकी परम्पराओं का दिक्दर्शन भी कराते हैं। क्योकि लोकगाथाएं जीवन्त साहित्य का उत्कृष्ट रूप होती है। वे जहां-जहां पहुंचती है वहां की स्थानीय विशेषताओं को अपने में समाहित कर लेती हैं। स्थानीय वातावरण की सृष्टि करना ही लोकगाथा गीत की सबसे बड़ी विशेषता है, यदि स्थानीय वातावरण एवं देश काल की छाप लोकगाथा में नहीं है तो वह लोकप्रियता अर्जित नहीं कर पाती है। यहां आपकी जानकारी और इस मत की पुष्टि के लिए हम उदहारणार्थ गंगू रमोला की लोकगाथा को प्रस्तुत कर रहे है-

6. रमोली- द्वारिकाधीश कृष्ण को स्वप्न में गंगू का राज्य दिखाई देता है। कृष्ण ने गंगू से दो गज भूमि तपस्या के लिए मांगी, किन्तु उसने देने में आना-कानी कर दी। वह समझता था कि कृष्ण आज दो गज भूमि मांग रहा है कल पूरा राज्य मांग लेगा। गंगू की लक्ष्मी, बकरी के सिर में निवास करती थी। बकरी बाहर वीसी रेवड़ के साथ कुलानी पाताल चरने गई थी। कृष्ण ने उसी जंगल में प्रवेश किया और दिव्य बांसुरी से लक्ष्मी मोहिनी सुर बजाया, बकरी श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे खिंचती चली आई। गंगू की लक्ष्मी का हरण कर कृष्ण अपनी द्वारिका लौट गए। इस प्रसंग में 'स्थानीयता'रमोली की रमणीय भूमि कुलानी पाताल बकरियां आदि स्थानीय वातावरण को प्रस्तुत कर रही है। जिससे लोकगाथा सीधे रमोली उत्तराखण्ड गढ़वाल से सीधे जुड़ गई है। लोकभाषा के शब्द भी स्थानीयता को प्रस्तुत करने में सहायक होते है।

7. उपदेशात्मक प्रसंगों का अभाव- गढ़वाल की इन लोकगाथा गीतों में संस्कृत की नीति कथाओं का नीति श्लोकों की तरह उपदेशात्मक नहीं मिलती है। लोकगाथा में अत्याचारी को उसके दुष्कर्म के लिए दण्डित किए जाने की बात अवश्य वर्णित रहती है, त्यागी-तपस्वी और परोपकारी व्यक्ति की प्रशंसा मिलती है। गाथागायक लोकगाथाओं को सुनाते हुए धर्म की रक्षा, और अधर्म के नाश को जोर देकर श्रोताओं तक पहुंचाता है। ताकि लोक इन लोकगाथाओं से अच्छी शिक्षा ले सकें और बुरी आदतों को छोड़ सके।

8. संदिग्ध ऐतिहासिकता- गढ़वाली की लोकगाथाएं गीत रूप में भी प्राप्त होती है। इनमें अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन मिलते हैं। भले ही पात्र इतिहास और पुराणों से लिए होते हैं लेकिन उसके पराक्रम दान, ज्ञान और अन्य जीवन व्यापार इतने अतिरंजित कर वर्णित किए जाते हैं कि वें इतिहास न होकर तिलस्मी पात्र जान पड़ते हैं। अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में इतिहास गौण पड़ जाता है और ये पूरी तरह काव्यानिक प्रतीत होने लगती हैं। इसका कारण श्रुत परम्परा से धटनाओं का विस्तृत होना माना जा सकता है। इनमें इतिहास तत्व, संकेत मात्र रह जाता है।

9. मौखिक परम्परा- लोकगाथा गीत लोकगाथा गीत के अनाम रचयिता के मुख से लोक में उतरते हैं, ये लिखित नहीं बल्कि श्रुत होते हैं अतः परम्परा से सुने जाने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी आगे चलते रहते हैं। इनेक लोकगाथा गीत अब भी अलिखित अवस्था में हैं और परम्परागत लोकगायकों द्वारा मौखिक रूप से गाए जा रहे हैं। इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि लोकगाथा गीत तभी तक जीवित रहते हैं जब तक उनकी मौखिक (वाचिक) परम्परा है। लिपिबद्ध होने पर उनका विकास रूक जाता है। यद्यपि डा. गोविन्द चातक, मोहनलाल बाबुलकर, डा. प्रयाग जोशी आदि ने कुछ लोकगाथा गीतों को संग्रहीत करने का प्रयास किया है फिर भी लिपिबद्ध लोकगाथा गीतों की संख्या बहुत कम है।

10. लोकरुचि के विषय- ये गढ़वाली लोकगाथा गीत लोक रूचि के अनुसार, प्रेम, त्याग, बलिदान, भक्ति आदि धर्म के मूलतत्वों पर आधारित होने से लोकरुचि को जाग्रत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है। इन भावनाओं को गेय और काव्यबद्ध रुप में प्रस्तुत करके लोकगाथा गायक यथावसर समाज में अपना जादू बिखेर देता है और लोकगाथा गीतां से जुड़े समागमों में बड़ी भारी भीड़ को जुड़ती देखकर कोई भी ऐसा अनुमान सहज ही लगा सकता है कि लोगों की इन लोकगाथा गीतों को सुनने में कितनी रुचि है।

11. विद्वता का अभाव- लोकगाथा गीतों में विद्वता, अलंकरण और कृत्रिमता का अभाव रहता है। अर्थात लोकगाथाओं से साहित्य का सौन्दर्य नहीं रहता है। गाथाकार की अभिव्यक्ति, रस, छन्द अलंकार के बन्धन से दूर लोकरुचि का ध्यान रखती है जिससे उसकी सहज लोकगाथा में प्रस्तुत लोकगाथा गीत, अनगढ़ रचना होते हुये भी समाज द्वारा स्वीकृत होती है और श्रुति परम्परा से चलती रहती है। ये अनगढ़ लोकगाथा गीत अपनी गेयता के कारण तथा कथानक जैसी प्रस्तुति के कारण समाज में अपनी जाग्रत अवरूथा में रहते है। जब भी सामान्य साहित्यिक गीत लोगों द्वारा विसरा दिए जाते हैं।

12. सामूहिकता- लोकगाथा गीत जन सम्पत्ति हैं वे परम्परा से लोक द्वारा संरक्षित किए जाते रहे हैं। वे एक बड़े समुदाय के मनोरंजन के साधन है तथा लोकपरम्परा में धर्म और संस्कृति के संवाहक भी माने जाते हैं। अंग्रेजी के बैलेड शब्द का अर्थ नृत्य करना है। लगता है आदिम समाज में लोकमानस में गाथा गीतों की परम्परा में नृत्य भी प्रचलन में रहा होगा। तब क्रमोत्तर इनमें गीत के साथ संगीत और क्रमबद्ध नृत्य पद संचालन भी आरम्भ हुआ होगा। ''पंडों'' ऐसा

ही एक लोक गाथा गीत है जो अब नृत्यनाटिका का रुप ले चुका है। लोकगाथा गीत समूह में गाए जाने वाले गीत है जिनमें नृत्य की भी एक विशेष परिपाटी है। तथा एक विशेष अवसर पर ही इनका गायन-वादन होता है।

निष्कर्ष:- गाथागायन पद्धति हमारी बहुत पुरानी पद्धति है। ऋग्वेद और ब्राहमण ग्रन्थों में भी अनेक गाथागीत संस्कृत ऋचाओं एवं श्लोकों में प्राप्त होते है। बौद्धकाल में गाथाएं समाज में प्रमुख मनोरंजन का साधन बन चुकी थी। भगवान बुद्ध ने कहा था कि मैं उसी कन्या से विवाह करुंगा जो गाथा-गायन में प्रवीण हो।

प्राचीन गाथासप्तशति आदि रचनाएं समाज में लोकगाथाओं की गहरी पैठ के प्रमाण है। गढ़वाल में लोकगाथा गायक एक समृद्ध परम्परा है जो जागरियों, वाद्य वादकों (आबजी) और ब्राहमणों के द्वारा वाचिक रुप में आज भी सुरक्षित है। राजस्थान में पवाड़े के रुप में थे वीरगाथा गीत आज भी जनता में जोश जगा रहे हैं। भारत के सभी प्रान्तों की लोकभाषाओं में उनके लोकगीत है। उनकी गाथा गायन भिन्न-भिन्न पद्धतियां है और उनकी अपनी धुनें है। कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में लोकगाथा गीतों का विकास उस समय हुआ होगा जब फ्रान्स आदि देशों में रोमांस साहित्य का सृजन हो रहा था। यूरोप में बैलेड का विकास सोलहवीं शताब्दी तक हो चुका था। इंग्लैण्ड का लोकगाथाओं में राबिन हुड सम्बन्धी प्रणयगाथाएं अत्यन्त लोकप्रिय है। स्कॉटलैण्ड के 'सर पैट्रिक स्पेस' 'द कुअल ब्रदर'और ' एडवर्ड'जैसे कथागीत, तो फिनलैण्ड और इटली तक प्रचलित हैं । कालान्तर में यूरोपिय जातियों के साथ वे अमेरिका पहुंच गए। डेनमार्क में 'बैलेड'प्रायः औलोकिक पृष्ठभूमि वाले होते है। जिनमें जादू-टोना और रुपान्तरण जैसी बाते मुख्य होती है। गढ़वाली लोकगाथा गीतों में गेयता के साथ-साथ कथानकों में जादू होना और रुपान्तरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। सम्भवत इन लोक गाथाओं की वर्ण्य विषय वस्तु में परस्पर आपसी साहचर्य के कारण ये तत्व धुल मिल गए हो। लेकिन उन अनाम लोक गाथाकारों की ये अनगढ़ रचनाएं मानस की लोकचेतना से अलग नहीं की जा सकती है। ये अपनी माणिक संरचना में भी अनगढ़ रहने पर भी सभी के द्वारा सहज बोधगम्य होती है क्योकि ये लोकगाथा में लोकतत्व तथा उसके श्रुत इतिहास को लेकर सदियों से लगातार वाचिक परम्परा से चली आ रही है।

## 10. गढ़वाली लोकगीतों की प्रमुख प्रवृत्तियां

अपनी प्रभूत विशेषताओं के लिए हुए गएवाली लोकगाथा गीतों की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियां भी है। अब हम उन प्रवृत्तियों की संक्षिप्त जानकारी दे रहे है। इन प्रवृत्तियों को रुढ़ियां भी कहा जा सकता है। क्योंकि अधिकांश गाथाओं में ये एक जैसी देखने में आती है। ऐसा लगता है जैसे इनका लोकगाथा के वर्णन में आना अनिवार्य सा अपरिहार्य हो। ये प्रवृत्तियां निम्नलिखित है-

1. प्रेम, विवाह तथा सुन्दरियों को जीतकर लाने वाली प्रवृत्ति- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में प्रेम, विवाह और सुन्दरियों की चर्चा अधिक मिलती है। जैसे- राजुला, मालूसाही में सौक्याणी देश (तिब्बत) को सुन्दरियों का निवास स्थान बताया गया है। कई भड़ स्वप्न में उनका दर्शन करके उन्हें पाने के लिए उतावले हो उठते है और उनकी खोज में चल पड़ते है। वहां उनके पतियों को हराकर सुन्दरियों को जीतकर ले आते है। योगी बनकर, योगी का वेश धारण कर प्रेयसी से मिलने का प्रयास, गढ़वाली लोकगाथा गीतों में वर्णित मिलता है। कुमांऊ में प्रचलित गंगनाथ गाथा में नायक जोगी का वेश बनाकर जोशीखोला में 'भाना'से मिलने आता है। राभी बौराणी में भी उसका पति जोगी का रुप धारण कर रानी के पातिव्रत्य की परीक्षा लेता है। श्रीकृष्ण गंगू के पास जोगी का वेश धारण कर उसकी रमोली में मिलते है और मुझसे भूमि मांगते हैं।

2. सतीत्व रक्षा को प्रमुखता- गढ़वाली लोकगाथा गीतों में स्त्री अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मबलिदान देने (सती) होने को तत्पर रहती है। गढ़ू सुम्याल की गाथा में गढ़ू कहता है 'यदि मेंरी मां विमला सतवन्ती होगी और मैंने उसके सहस्रधारों वाला स्तनपान किया होगा तो मेरी रधुकुंठी धोड़ी आसमान में उड़ने लगेगी'। अनेक गाथाएं इसकी प्रमाण है रणूरौत की गाथा में ,रणूरौत की माता अमरावती अपने पुत्र रणूरौत से कहती है कि तेरी मंगनी तेरे पिता ने स्यूंसला से की थी। मुझे आज 'मेधू कलूनी'जबरदस्ती ब्याहकर ले जा रहा है। तुझे मेरी कसम है अपने शत्रु को मारकर स्यूंसला का डोला जीत कर ला। युद्ध में रणू के मरने के बाद स्यूंसला उसकी चिन्ता में कूदकर अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई प्राण दे देती है। कालू भण्डारी कर गाथा में भी कालो भण्डारी के द्वारा बेदी के मंडप में छः फेरे फेर देने वाले रुपू को मार देने के बाद 'रुपू'के भाई 'लूला गंगोला'के द्वारा कालू भण्डारी को मार देने पर वह नवविवाहिता रुपू और काले भण्डारी के शव को अपने दोनों जांधों में रखकर चिता में भस्म हो जाती हैं। कफ्फू चौहान की गाथा में भी उसकी पत्नि और मां 'देवू'के द्वारा कफ्फू की सेना के पराजित हो जाने के समाचार को सुनकर चिता बनाकर जल जाती है। तैड़ी की तिलोगा की प्रेमगाथा में भी तिलोगा अमरदेव सजवाण के मारे जाने पर अपने दोनों स्तन काटकर अपनी आत्महत्या कर देती है। तिगन्या के डांडे में चिता बनाकर अमरदेव सजवाण के साथ तिलोगा के शव को भी भस्म कर दिया जाता है। इस प्रकार प्रेमी के साथ प्रेमिका की जीवनलीला का अन्त दिखाना गढ़वाल लोकगाथा गीतों की भरमार रही है।

3. जन्म व सन्तान सम्बन्धी रुढ़ियां- जन्म के समय नक्षत्र आदि के सम्बन्ध में गाथाओं में प्रचलित रुढ़ियां सर्वत्र एक जैसी मिलती है। जैसे- वीर का पुत्र ही होगा, 'जिसके बाप ने तलवार मारी उसकर बेटा भी तलवार मारेगा'। वंशानुक्रम परम्परा का वर्णन क्रम भी एक जैसे वणित जैसे- ''हिवां रौत का भिवां रौत, भिवां रौत का राणू रौत।

4. शकुन-अपशकुन सम्बन्धी रुढ़ियां- शकुन-अपशकुन वाली प्रवृत्ति गढ़वाली लोकगाथा गीतों में सर्वत्र मिलती है। 'जीतू बगड़वाल'की गाथागीत में जब जीतू अपनी बहिन को बुलाने जाता है तो उसकी मां द्वारा बकरी के छींकने को अपशकुन बताया गया है। इसी पकार राधिका गाथा गीत में जब राधा की माता उसकी ससुराल के लिए पुवे बनाती है तो पहला पुवा तेल में डालते ही नीला पड़ जात है, यह देखा राधिका की मां शंका से व्याकुल हो उठती है- और सोचती है ''न जाने मेरी राधिका कैसी होगी'' ?

5. स्त्री को दोहद की इच्छा- वीर पुरुष की स्त्रियां दोहद अवस्था में अपने वीर पति को मृग का मांस खाने की इच्छा प्रकट करती है। तब वीर पुरुष अपनी नवविवाहिता पत्नी की दोहद इच्छा पूरी करने के लिए जंगल में जाकर शिकार खेलने जाता है और वहां संकट में फंस कर मर जाता है, जो विजयी होकर आता है उसके विषय विलास का भव्य वर्णन लोकगाथा गीत प्रस्तुत करते हैं कि उसकी रानी ने अपना कैसा श्रृंगार किया है। इस वर्णन में अश्लीलता नहीं रहती लेकिन अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन रहता हैं।

6. कोमल संवेदनाओं से जुड़े लोक विश्वास- गढ़वाली लोकगाथा गीत, आस्था विश्वास और रुढ़ियों से जुड़े हुए है। ज्योतिष पर विश्वास, शकुन-अपशकुन की धारणा, लोक रुढ़ियां जैसे- सुअर का धरती खोदना, सूखी लकड़ी ढोता आदमी, कान फड़फड़ाता कुत्ता, भेड़ियों और ऊल्लू की आवाजें, हंसिया या कुदाली-फावड़े पर धार चढ़ाते समय उसका चटकना आदि अपशकुन के रुढ़िगत विश्वास है। शुभ संकेतो में पानी का गागर भर कर लाने वाली स्त्री, कबूतर या धुधती पक्षी का दिखना शुभ माना जाता है।

7. तन्त्र-मन्त्र में विश्वास- ये लोकगाथा गीत, तन्त्र-मन्त्र के प्रभाव का भी बखान करते है। जोगियों के कांवड़ की जड़ी, बोक्साड़ी विद्या, ज्यूदाल, तुम्बी का पानी आदि में गढ़वाली जनमानस का विश्वास इल लोकगीतों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय होता है। जगदेव पंवार और सदेई की गाथा में बलिदान का महत्त्व सिदुवा-विदुवा का संकट काल में सहायक होना आदि लोकविश्वासों का भी वर्णन गाथागीतों में मिलता है। निष्कर्षतः लोकगाथा गीत लोक विश्वास और आस्था को लेकर रचे गए मिथकीय आख्यान गीत है जो परम्परा के वाचिक साहित्य के रुप में चले आ रहे है।

11. डा. मोहनलाल बाबुलकर द्वारा उल्लिखित गढ़वाली लोककथाओं की 43 प्रवृत्तियां निम्नवत् हैं।

☐ कर्मयोग के लिए जन्म की प्रधानता का विश्वास।

☐ प्राणों को अन्यत्र प्रतिष्ठा मिलना।

☐ मन्त्र बल से शरीरन्तरण की प्रवृत्ति।

- शरीर छोड़कर प्राणों को दूसरे जीव में स्थिति।
- चमत्कारी गुण।
- पशु-पक्षियों की भाषा।
- सहानुभूति और सहायता।
- भगवान और उसकी शक्ति पर विश्वास।
- धर्म साक्षी।
- प्रकृति की सहानुभूति
- जादू द्वारा अनहोनी बाते।
- स्त्री पात्रों की सहृदता।
- पुरुषों की अपने आपको नायिकाओं को अपने आप को सौंपने की प्रवृत्ति।
- पछताने की प्रवृत्ति।
- समस्यामूलक उक्तियों द्वारा समाधान की प्रवृत्ति।
- व्रत रखने की प्रवृत्ति।
- प्रेम की प्रधानता।
- स्वप्नावस्था में देखी राजकुमारी को पाने की होड़।
- सभी कथाओं में लगभग एक ही प्रकार की घटनाएं।
- बहिन तथा पत्नी का स्वार्थी होना।
- सौतियां मां का क्रूर व्यवहार होना।
- सास-बहू का झगड़ा।
- पुरुष बलि
- भूत-प्रेतों की बहुलता।
- जादू की सहायता से दुश्मन को परास्त करना।

- छोटी सी डिबिया से बावन व्यंजन तैयार करना।
- रानी या राजकुमारी के पेट से सिलोटा या सर्प निकलना।
- स्त्री का पर पुरुष ये प्रेम और अपने पति को मारने की साजिश।
- स्त्रियों का पति की नासमझी से फायदा उठाना।
- जानवरों से असमान विवाह की प्रवृत्ति जैसे- 'स्याल का विवाह' बाधीन से।
- विधवा को नासमझ, मक्कार, जाली और कुकर्मी समझने की प्रवृत्ति।
- उपदेशात्मक के सज्ञथ मनोरंजकता की प्रवृत्ति।
- लोककथाओं में तीन सौ से चार हजार रूपये, सात भाई, एक बहिन, सात समुद्र, सात परियां, तात्पर्य कि रात नम्बरों की बार-बार पुनरावृत्ति।
- मामा-मामी का रिश्ता नायकों के प्राण बचाता है।
- राजकुमारियों की तुलना फूलों से करने की प्रवृत्ति।
- राजकुमारी के मुंह से प्रसन्नता में सफेद फूलों का झरना और दुख में कोयले झरना।
- आदमी का कड़ावे में पकना, झझर छूने पर जीवित होना।
- निल्लाह तथा अमृत ताड़ा द्वारा जीवित होना।
- आत्मिक असंतोष के कारण पक्षी बनने की प्रवृत्ति।
- पंखों को जलाकर एवं मूछों को रगड़कर राक्षसों की रक्षा करना।
- राह चलते लोगों को गद्दी का मालिक बनाने की प्रवृत्ति।
- पशु-पक्षियों का कथानायकों एव ंनायिकाओं का सहायक होना।
- स्त्रियों द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा, तथा पुरुष द्वारा मां के दूध का वास्ता देकर युद्ध में जाना।

इन प्रवृत्तियों के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य प्रवृत्तियां भी गढ़वाली लोक साहित्य में देखने में आती है।

- गढ़वाली में नारी केन्द्रित लोक साहित्य है।

- लोक जीवन का आंखों देखा यथार्थ चित्रण मिलता है।
- धार्मिक आस्था, जादू-टोने में विश्वास प्रबल है।
- गढ़वाली भाषा की मूल प्रकृति की रक्षा की गई है। गढ़वाली लोककाव्य में लोकतत्व पूर्ण प्राण-प्रतिष्ठा के साथ विराजमान है।
- पुराने और नए साहित्य में भारी अन्तर आता जा रहा है। नया लोक साहित्य नई प्रवृत्तियों से ओतप्रोत है। इनमें शिल्प और शैली की दृष्टि से भी अन्तर आ गया है। हिन्दी गद्यात्मक काव्य विद्या और कथा के प्रभाव से गढ़वाली साहित्य समाजोपयोगी, व्यवहारिक साहित्य का अनुगमनकर्ता बनता नजर आ रहा है।
- वर्तमान लोक साहित्य में आक्रोश की प्रवृत्ति लोक साहित्य में घर करती नजर आती है। समस्याओं पर केन्द्रित, लोक की दृष्टि को पहचान कर नए रचनाकार नव लेखन कर रहे हैं। इनके लेखन में जनता की भाषा है। जनता के विचार है और जनाक्रोश हैं।
- परिवर्तन की इच्छा, वर्तमान लोक साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है।
- वर्तमान लोक साहित्य में यथार्थ का नग्न चित्रण करने की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है।
- कविता (लोक काव्य) में अलंकृत पद् विन्यास, नए छन्द, गीति युक्त लयात्मक पदबन्ध विशेषकर (गजल, गीत) आदि में रुचि बढ़ती जा रही है।

निष्कर्षतः गढ़वाली कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि में हिन्दी साहित्य की नई प्रवृत्तियों को भी अपनाने में संकोच नहीं किया है। प्रारम्भिक गढ़वाली साहित्य में संस्कृत शब्दों की बहुलता थी। अब धीरे-धीरे हिन्दी शब्दों का प्रचलन गढ़वाली साहित्य में बढ़ता जा रहा है। गढ़वाली भाषा ने इन शब्दों को अपने अनुरुप ढालने और युगान रुप उसे भाषित विस्तार देने के प्रयास किए है। संस्कृत छन्दों के अलावा मौलिक छन्द विधान कवियों के द्वारा अपनाया जा रहा है। कवि भोला दत्त देवरानी तथा कन्हैयालाल डंडरियाल में बिम्ब ग्रहण की प्रतिभा अधिक है। काव्य रुपों की दृष्टि से गढ़वाली में आरम्भ से ही काव्य रचना की प्रवृत्ति अधिक है। अब तक केवल दो काव्यों भूम्याल तथा नागरजा को महाकाव्यों के रुप में स्वीकार किया गया है। गढ़वाली में कुछ कवियों में लम्बी मुक्तक कविताएं लिखी है। जिनका अब प्रचलन बन्द हो चुका है। इस सदी के अन्तिम दो दशकों में प्रकाशित होने वाले प्रमुख मुक्तक काव्य इस प्रकार है- सिंह सतसई (भजन सिंह 'सिंह'), रमछोल (चन्द्र सिंह राही), कपाली की छमोट (महावीर प्रसाद गैरोला), ढांगा से साक्षात्कार (नेत्रसिंह असवाल), मेरो ब्वाडा (पूरण पन्त पथिक), कुयेड़ी (कन्हैयालाल डंडरियाल), खुचकण्डी एवं गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर (नरेन्द्र सिंह नेगी), दिख्यां दिन तप्यां घाम एवं हैंसदा फूल खिलदा पात (ललित केशवान), कांठयों मा औण से पैलि (देवेन्द्र प्रसाद जोशी), दैसत (अबोधबन्धु बहुगुणा), कमेड़ा आखर (बीना बेंजवाल),

तिमला फूल एवं पशीनिक खुशबू (चिन्मय सायर), ये गुठ्यार (रघुबीर सिंह अयाल), बेदि मा का बचन (महेश तिवाड़ी), रामदेई (नित्यानन्द मैठानी), शैलोदस तथा कणखिला (अबोध बन्धु बहुगुणा), इलमतु दादा (जयानन्द खुगशाल), रैबार (प्रेमलाल शास्त्री) आदि सुप्रसिद्ध गढ़वाली मुक्तक काव्य है। जो कि नवीनतम प्रवृत्तियों को आत्मसात किए हुए हैं।

## 13.4 सारांश

गढ़वाली लोक साहित्य के काव्य तत्वों में रस की प्रधानता हैं। उसके काव्य, नाटक, उपन्यास, कथाएं, और गाथाएं और अन्य सभी विधाएं श्रृंगार, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत तथा हास्य रस से ओत-प्रोत है। वर्णनों में मानवीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। वीर भड़ों और सुन्दरियों के सौन्दर्य वर्णन में अलंकारों की चकाचौंध दिखाई देती है। जादू-टोने तथा मिथ का घाल-मेल यहां के लोक साहित्य में सर्वत्र मिलता है। शैली और शिल्प की दृष्टि ये प्राचीन गढ़वाली लोक साहित्य में एकरुपता दिखाई देती है। इनमें जनता की भाषा, विश्वास और मान्यताओं का अनुरक्षण का भाव समाहित है। सम्प्रति हिन्दी, संस्कृत और अन्य प्रादेशिक भाषाओं में रचे आधुनिक लोक साहित्य का प्रभाव भी गढ़वाली लोक साहित्य पर पड़ रहा है।

## 13.5 शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| सेरा | - | सिंचित खेत |
| फूलदेई | - | गढ़वाल-कुमांउ का प्रसिद्ध त्यौहार है। फूल संक्राति के अवसर पर कुंवारी कन्याएं सुबह-सुबह उठकर गृहद्वारों पर फूल चढ़ाती हुई कल्याण कामना के गीत गाती है।, |
| उच्याणा | - | प्रायः देवता से कोप से बचने के लिए मुर्गा, मेढ़ा या बकरा इस आश्वासन के साथ बलि के लिए रख दिया जाता था कि देवता की पूजा बाद में कर दी जायेगी जिसमें उन्हें चढ़ा दिया जायेगा। प्रायः उसे नियत करते समय उसके उपर संकल्प के साथ अक्षत घुमा दिए जाते थे। |
| छूड़े | - | एक प्रकार के गीत है जो रबाई क्षेत्र में प्रचलित है। इनमें गहन चिन्तन और काव्य तत्वों के दर्शन होते है। |
| बाजूबन्द | - | एक प्रकार का तात्कालिक गीत है। जिसमें स्त्री-पुरूष का प्रेम संवाद प्रमुख होता है। बाजूबन्द के कई रूप सम्भव है। बहुत कुछ तो दो व्यक्तियों के सम्बन्धों, स्थितियों, सहमति- |

असहमति, निन्दा-स्तुति आदि कई बातों पर बाजूबन्द गीतों के संवाद निर्भर करते है।,

पाखा - पर्वत का एक हिस्सा।

भूम्याल - भूमि का देवता।

## 13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. गढ़वाली लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।


## 13.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक गाथाओं की अन्य प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए।
2. लोकगाथा गीतों की कोई दो प्रमुख प्रवृत्तियां बताओ।
3. गढ़वाली लोकगीत की प्रमुख प्रवृत्तियां क्या है ?

# इकाई 14गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं समस्याएं

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप
14.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्त्व और सौन्दर्यानुभूति
14.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं
14.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य की विधाएं
14.4 सारांश
14.5 अभ्यास प्रश्न
14.6 शब्दावली
14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
14.9 सहायक पाठ्य सामग्री
14.10 निबन्धात्मक प्रश्न

## 14.1 प्रस्तावना

गढ़वाली लोक साहित्य भारत के अन्य प्रादेशिक/आंचलिक लोक साहित्यों की अपेक्षा समृद्ध और विकासशील स्वभाव वाला साहित्य है। इसका कारण इसकी प्राचीन (पौराणिक विरासत) और हिमालयी वातावरण में समस्त भारत के लोगों की युग-युग से आस्था तथा यहां बसने की आत्मीय (अभिलाषा) भी प्रमुख है। यही कारण है यहां के लोक साहित्य में धर्म सहिष्णुता, सामाजिक सद्भाव और करुणा तथा मैत्री के साथ, प्रेम और युद्धवीरता तथा त्याग के अनेक उदहारण मिलते हैं। प्राचीन लोक साहित्य में 'कृष्ण'और पाण्डव प्रभूत मात्रा में वर्णित है। मन्दा भगवती, राजराजेश्वरी होने के कारण यहां के लोक साहित्य की आधेय और आधार है, वह देवी के रुप में लोक साहित्य की प्रत्येक विधा में स्थान पाए है।

काव्य, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य और लोकगीतों में हिमालयी प्रकृति, देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग और नर तथा राक्षस भी आदर के साथ साहित्य में स्थान पाए दिखते हैं। यहां के पशु-पक्षी और वृक्ष लताएं भी मानव के सहचर हैं। वे यहां के लोक के अविच्छित अंग है। उन्हें यहां के लोकमानस से अलग हटाकर नहीं देखा जा सकता है।

इसके मौखिक साहित्य में ढोल सागर अनेक अश्रुत जागर गाथाएं, पवाड़े, विरुदआज भी अपने संग्रहकर्ताओं की बाट जोह रहे हैं। इन कलाओं को बहुत कुछ मात्रा में कुछ पुरखों ने अपनी पोथियों में लिखकर सुरक्षित किया तो कुछ को परम्परा से आवजी और पुरोहितों ने अपनी वाणी से रटकर सुरक्षित कर रखा है।

## 14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन के उपरान्त आप गढ़वाली लोक साहित्य से सम्बन्धित निम्नलिखित तथ्यों को जान सकेंगे-

1. गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप कौन सा है ?
2. इसके अन्दर लोक साहित्य की किन-किन विधाओं में कार्य हो रहा है ?
3. परम्परागत लेखन और वर्तमानकालीन नए लेखन में किन-किन बातों में मूलभूत अन्तर आ रहा है ?
4. गढ़वाली लोक साहित्य के आगे वर्तमान में क्या-क्या चुनौतियां आड़े आ रही है ?
5. गढ़वाली में रचित प्रमुख महाकाव्य-खण्डकाव्य, गीति और मुक्तक काव्य कौन-कौन से है ?

## 14.3गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप

गढ़वाली लोक साहित्य की खोज के लिए अंग्रेज सर्वेक्षकों विलयम क्रुक व ग्रियर्सन आदि के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। मध्य पहाड़ी बोली पर एटकिन्सन के द्वारा किए गए कार्य को महत्त्वपूर्ण माना गया है। यहां के साहित्य को लिपिबद्ध करने और उसकी समग्र जानकारी एकत्र करके पुनः उसकी समीक्षा टीका करके फिर शोधपूर्ण विवेचना के साथ प्रकाशित करने वाले विद्वानों के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। इन विद्वानों में तारादत्त गैरोला, पादरी मिस्टर ओकले, आत्माराम गैरोला, यमुनादत्त वैष्णव, गोविन्द प्रसाद घिल्ड़ियाल, शिवनारायण बिष्ट, भजन सिंह 'सिंह', डा. गोविन्द चातक, डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश'मोहनलाल बाबुलकर, शिवानन्द नौटियाल और महावीर प्रसाद लखेड़ा अग्रगण्य है। इन विद्वानों के प्रयास से इनकी पुस्तकों से गढ़वाली लोक साहित्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य की जानकारी मिलती है।

गढ़वाली लोक साहित्य पर अनेक शोध प्रबन्ध भी लिखे गए है। सर्वप्रथम डा. नन्द किशोर ढौडियाल ने जागर गीतों पर शोध प्रस्तुत किये तदनन्तर डा. प्रयाग जोशी ने पहली बार कुमाऊं और गढ़वाल की लोक गाथाएं संशिल्ष्ट विवेचन प्रस्तुतत किया। उन्होंने लोक गाथाओं में बहुत कुछ नया जोड़ा है। डा. उमाशंकर 'सतीश'ने जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुतत किया, मोहनलाल बाबुलकर ने पश्चिमी पहाड़ी की उप बोली जौनपुरी (जौनसारी) के लोक साहित्य एवं कला पर पहली विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया, विष्णुदत्त कुकरेती ने नाथ पंथ और गढ़वाल तथा बुद्धिराम बडोनी ने गढ़वाल के लोक काव्य पर प्रशंसनीय कार्य किया है। इसी श्रृंखला में 'गढ़वाली के सांस्कृतिक और सौन्दर्य शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य'विषय पर श्रीमती आनन्दी जोशी ने तथा गढ़वाल के साहित्य-संस्कृति पर स्कन्दपुराण का प्रभाव तथा चन्द्रशेखर बडोला ने गढ़वाली कहावतों का साहित्यिक, सांस्कृतिक अध्ययन उल्लेखनीय कार्य करके गढ़वाली लोक काव्य साहित्य को जीवन्तता प्रदान की है।

गढ़वाली लोकभाषा में आज विविध विद्याओं में साहित्य उपलब्ध है। गढ़वाल पद्य में गीत संग्रह, काव्य और निबन्ध प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। इनका पुराना साहित्य भी प्रचुरता से उपलब्ध है। पद्य विद्या में 1822 से 1900 तक संस्कृत का प्रभाव लक्षित होता है। गीत और कविता के पुराने लेखकों में तोताकृष्ण गैरोला, आत्माराम गैरोला, चक्रधर बहुगुणा, भगवती प्रसाद निर्मोही, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, मनोहर उनियाल 'श्रीमन', सदानन्द जखमोला 'सन्तत', विशालमणि शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। कहानी और निबन्ध लेखकों में डा. गोविन्द चातक, डा. महावीर प्रसाद गैरोला, मोहनलाल नेगी, प्रेमलाल भट्ट, दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल प्रसिद्ध है। नाटक विद्या के क्षेत्र में पुरुषोत्तम डोभाल, सुदामा प्रसाद 'प्रेमी'ललितमोहन थपल्याल, स्वरुप ढौड़ियाल, कन्हैयालाल डंडरियाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, नित्यानन्द मैठानी और गोविन्द चातक उल्लेखनीय है। गढ़वाली लोक साहित्य के अन्य

हस्ताक्षरों में जीत सिंह नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, गिरिधारी प्रसाद 'कंकाल', ललित केशव, उमाशंकर 'सतीश', शेर सिंह 'गढ़देशी'और जीवानन्द श्रीपाल का नाम आदर के साथ लिया जाता है। गढ़वाली गद्य साहित्य में व्यंग्य लेखन के अप्रतिम हस्ताक्षर नरेन्द्र कठैत साहित्य पथ पर एक मील के पत्थर सिद्ध हो रहे है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक परिदृश्य बदला, आधी सदी से भी अधिक के इस समयान्तराल में गढ़वाली काव्य ने बहुआयामी विस्तार पाया और गढ़वाली साहित्य लेखन में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस काल खण्ड में सैकड़ों काव्य कृतियां प्रकाश में आई, कला की दृष्टि से नौबत 1953 चक्रधर बहुगुणाः तिड़का (1956), रणभंजण (1963), पार्वती (1966), धोल (1977), भूम्याल (1977), एवं दैसत (1996) सभी अबोध बन्धु बहुगुणा चित्र काव्य एवं रोन्देडु (1995), अश्रुमाला (1958) एवं दुदुभिः डिमडिम (1965) श्रीधर जमलोकी नवांण (1956) एवं फुर घिडुडी (1957) गिरधारी प्रसाद 'कंकाल'। ढांगा से साक्षात्कार (1988), नेत्र सिंह असवाल, पसीन की खुशबू (1989) एवं तिमला फूल (1977) चिन्मय सायर। कॉढ्यो मा औण से पैलि (1994), देवेन्द्र प्रसाद जोशीः खुचकण्डी (1991) एवं 'गाष्यूं की गंगा स्याण्यू का समोदर' (1999) नरेन्द्र सिंह नेगी। कमेड़ा आखर (1996) वीना बेंजवाल गढ़वाली काव्य की स्वातन्त्रयोत्तर उल्लेखनीय काव्य कृतियां है। इस काल खण्ड में विभिन्न कवियों के संयुक्त कविता संकलन भी खूब छपे है जिनमें 'फ्यूंली' (1953), मौल्यार (1963), छम घंुघरु बाजला (1964), खुंदेड़ गीत सागर (1964) रॅत रैबार (1963), बुरांस (1965) 'छैं' (1980) और गंगा जमुना का मैत बटि (1978) प्रमुख है। इनके अतिरिक्त 'बाहुली', हिडबांस, मैती, बुग्याल, बुरांस, चिट्ठी पत्री और धादा (1978) प्रमुख गढ़वाली पत्र-पत्रिकाएं हैं। जिन्होंने गढ़वाली काव्य साहित्य को दिशा प्रदान करने में बहुमूल्य योगदान दिया है।

स्वतन्त्रता के बाद सामाजिक परिदृश्य बदल जाने पर कविता की भाव-भूमि भी बदल गई, तिड़का, फ्यूंली की तथा रौन्देडु सामाजिक बदलाव के काव्य है। डा. कोटनाला का मत है कि इसके आगे अधिक गहरी पैठ बनाकर समाजवाद काव्य चेतना के जन पक्षीय संघर्ष को कविता में परिणत करने का प्रयास किया गया। भूम्याल लोकतान्त्रिक, सामाजिक मूल्यों का काव्य है। इसी समाजवादी दृष्टिकोण से रचित, अज्वाल, धैं, एक ढांगा की आत्मकथा, ढांगा से साक्षात्कार, कमेडा आखर, कॉठ्यो मा ओण से पौलि, तिमला फूल आदि जनसंघर्षी रचनाएं हैं।

पर्यावरणीय चिन्ताओं ने कवियों को सदैव उद्वेलित किया है। प्रकृति के साक्षात्कार से युक्त स्वतन्त्रयोत्तर रचनाओं में सदानन्द जखमोला का रैबार, गढ़गुणत्याली उल्लेखनीय है। पहली पीढ़ी के कवियों के सभी गढ़वाली काव्य रसानुभूति के काव्य है। इसमें श्रृंगार की कोमल भावनाएं और गढ़वाली भाषा का सौष्ठव चरम पर पहुंचा है। दूसरी पीढ़ी के कवियों में गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' तथा जीत सिंह नेगी प्रेम के कवि रहे है। जब नरेन्द्र सिंह नेगी को प्रेम गीतों के अतिरिक्त प्रकृति और आन्दोलन के गीत लिखने में अधिक सफलता मिली है। उनके काव्यों में

साहित्यिक का पुट भी देखने में आता है। उनकी कृति 'खुचकण्डी'इस दृष्टि से पढ़नीय है। नरेन्द्र सिंह नेगी के साथ ही छन्द विधान को दुरुस्त करने में चक्रधर बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद 'कंकाल'का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इन्होंने नए छन्दों का भी सृजन किया है। शिल्प की दृष्टि से भी नए-नए प्रयोग कन्हैयालाल डंडरियाल की ॲजवाल और अबोध बन्धु बहुगुणा के काव्यों में सर्वत्र दिखते है। ॲजवाल ने तो इतना नवीन शिल्प अपनाया कि वह वर्तमान के कई कवियों का वर्ण्य और अभिव्यक्ति की शैली ही बन बैठा है। डॉ जगदम्बा प्रसाद कोटनाला ने दो टूक शब्दों में हिन्दी काव्य शिल्प के प्रधान को निम्नवत् अभिव्यक्त किया है-

'लोकधर्मी काव्य कला को छोड़कर हिन्दी काव्य शिल्प ने गढ़वाली काव्य शिल्प को अत्यधिक प्रभावित किया है'।गढ़वाली छन्द मुक्त काव्य शिल्प ने जैसे हिन्दी की नई कविता के शिल्प को अपना लिया है।

निष्कर्षतः स्वातन्त्र्योत्तर काव्य साहित्य समाजवादी विचार धारा और प्रयोगधर्मी काव्य कला से अनुप्राणित हुआ है।

महाकाव्य- अब तक गढ़वाली में दो ही महाकाव्य प्रकाश में आ सके हैं। अबोध बन्धु बहुगुणा द्वारा रचित 'भूम्याल'जिसे 'हिमालय कला संगम'ने सन् 1977 में प्रकाशित किया तथा दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा रचित 'नागरजा'चार भागों में प्रकाशित हैं। नागरजा भाग 1 व 2 को गढ़वाली साहित्य परिषद्-कानपुर ने सन् 1993 ई. में तथा 2000 ई. में दूसरा संस्करण प्रकाशित किया तथा भाग 3 व 4 को कवि के पुत्र हरिकृष्ण डंडरियाल ने ब्रज मोहन सिंह राणा के सहयोग से सन् 2009 में प्रकाशित कराया। इन दो महाकाव्यों के अतिरिक्त तीसरा महाकाव्य अभी देखने में नहीं आया है। गढ़वाल में विष्णु को नागरजा तथा नरसिंह दोनों रूपों में सर्वत्र पूजा जाता है। जबकि शिव को निरंकार के रुप में पूजते है। गढ़वाल की टिहरी जनपद के सेम-मुखेम में नागरजा का मन्दिर है तथा सभी गढ़वाली उसकी तीर्थ यात्रा करते है। किंवदन्ती है कि सेम-मुखेम का नागरजा का मन्दिर गंगू रमोला ने बनवाया था। नागरजा प्रबन्धकाव्य गणेश् और ब्रह्मा की वन्दना से आरम्भ होता है। ब्रह्माण्ड, रज, पुरुष, काल, महत्त्व, अहंकार, आकाश, शब्द, वायु, तेज, प्रकाश, गन्ध, भूमण्डल, पंचभूत देवता, ब्रह्मा-विष्णु, आदि के वर्णन के साथ प्रथम उपखण्ड समाप्त होता है। उपखण्ड दो तथा तीन में शिव-सती तथा शिव-पार्वती प्रसंगों में ही कवि का वास्तविक कवित्व मुखर हुआ है। कविवर डंडरियाल ने शिव और सती के कथानक को गढ़वाली लोक जीवन के अनुरुप वर्णित किया है। इस काव्य में शिव नन्दी बैल को चुगाते है तो सती गाय के लिए घास लाती है। यक्ष, किन्नर और गुहय्क गढ़वाली परिधान पहनकर दक्ष यज्ञ में जाते है। सती के दक्ष यज्ञ में भस्म होने पर दक्ष को शिवद्रोह और अहंकार का निर्मम फल मिलता है। उनके क्रोध को देखकर सब रुद्र की वन्दना करते है कि-

हे दयामय दीनबन्धु, पाप का भांडा छवां।

जीव हम बन्धन मंगा, प्रभु कर्म का खांडम छवां।।

संसार थैं सन्मार्ग दीणौ तुम ये लीला करदवा।

निर्विकारी शंभु तुम संताप जगती हरदवा।।

दैणो ह्वेजा ईश्वर, हे भूमि भूम्याल

गौबन्द मुख मा तृण ल्हे, भेंट धरी अग्याल।।

अर्थात- हे दयामय दीनबन्धु ईश्वर! हम पाप के भांडे है। हम जीव कर्म के बन्धनों में फंसे है। संसार को सन्मार्ग देने के लिए तुम यह लीला रचते हो। हे निर्विकारी शम्भु! तुम जगत के सन्तापहारी हो। हे भूमि के भूम्याल अब प्रसन्न हो जाओ। हम गोबन्द (अति सरल, निष्कपट) होकर तृण मुख में लेकर तेरी अग्याल (पूजान्न) भेंट लेके खड़े है।

इस महाकाव्य में कवि भगवती जगदम्बा की आराधना निम्नवत् करता है-

तू ब्वै छैं हम लड़िक छवां, अंदालि लगी ग्यों तेरी।

खुचिलि पकड़ि ल्हे खुद लगीं, मंुडलि मलासी मेरी।।

अन्तर प्रेम पछ्याणि की प्रकट ह्वाय भवानि।

आदिशक्ति मां भगवती, सेवा हमारी मानि।।

अर्थात- तू मां है हम तेरे पुत्र हैं। तू हमें अपनी गोद में लेकर हमारे सिर पर अपना हाथ फेरकर अपना आर्शीवाद दें। शिव लीला के वर्णन में कवि ने श्रृंगार, हास्य, रौद्र, वीभत्स, आदि रसों का समुचित प्रयोग किया है।

नागरजा भाग-2 में नागरजा कृष्ण की लीला का भक्तिमय वर्णन है। इस सर्ग में कवि ने कंगालियां भाट (एक पात्र) की अवतारणा की है। जो कुंठाओं, कुवृत्तियों, व्यभिचार और स्वार्थ सिद्धि के लिए छद्मवेशी धार्मिक कर समाज को भ्रष्ट कर देता है। इस सर्ग में भगवान कृष्ण कंगाली भाट को नटखट सुंदरी बनकर ज्ञान, कला और सौन्दर्य के बल पर मोहित कर उसे जगत कल्याण का सन्देश देते है। कवि ने एक कल्पित पात्र कंठी दादा के माध्यम से जीव जगत, ईश्वर, तप-त्याग, सगुण-निर्गुण आदि दार्शनिक शंकाओं का विवेकपूर्ण ढंग से कंठी दादा के माध्यम से समाधान कराया है।

निष्कर्षतः इस काव्य की शैली अलंकृत और सरस है। इसमें ठेठ गढ़वाली शब्दों का ठाठ देखने में आता है। महाकाव्य के सभी लक्षण नागरजा में प्राप्त होते हैं। नागरजा में गीतिका, हरिगीतिका,

कवित्त, सवैया, भुजंग प्रयात, उपजाति, इन्द्रबज्रा, उपेन्द्रबज्रा, ताटंक, दोहा, चौपाई आदि छन्दों को प्रयुक्त किया गया है।

'भूम्याल'खण्डकाव्य- भूम्याल का प्रकाशन सन् 1977 में हुआ। इसमें भूमि, उलार, दन्दोल, मिलन, कर्म, विरह, औळ, ममता, विहार, परिणय, दुन्द, रोपणी, विलाप, थर्प, जलेथा और उपसंहार कुल 16 सर्ग है। काव्य का नायक लोकप्रसिद्ध उद्दात्त वीर भड़ जीतू बगड़वाल है तथा नायिका भरणा है। काव्य का मुख्य संदेश सामजवादी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की प्रतिस्थापना है। इसमें अनेक मौलिक छन्दों का सृजन किया गया है।

### 14.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्व और सौन्दर्यानुभूति

गढ़वाली काव्य, रसतत्व की प्रधानता के कारण अलग पहचाने जाते है। श्रृंगार, वीर, हास्य, करुण और अद्भुत इन रसों की गढ़वाली कविता में सर्वत्र स्थिति देखी जा सकती है। वीरगाथाएं यदि श्रृंगार, करुणा और वीर रस से भरी है तो लोककथाएं, अद्भुत रस और अन्य रसों की अनुगामिनी है। लोकगीतों में सर्वत्र श्रृंगार और प्रकृति चित्रण, करुण रस तथा सामाजिक जीवन के चित्र (बिम्ब) मिलते है। अलंकारों का प्रयोग कविवर श्रीयाल की अन्याक्षरी कविता में अधिक दिखता है। डंडरियाल जी का 'नागराजा' भी अलंकृत काव्य है। अन्य कवियों में नरेन्द्र सिंह नेगी, को छोडकर प्रायः काव्यालंकारों के प्रति मोह नहीं दिखाई देता है।

उन्होंने रस को ही प्रधानता दी है। भजन सिंह 'सिंह'और उनके युग के कवि सामाजिक समस्याओं के चित्रण में अधिक सफल हुए है। स्वातन्त्रयोत्तर प्रगतिवादी चेतना भी इन काव्यों की पृष्ठभूमि में कार्य कर रही है। देश भक्ति, वीरता, त्याग और सुधार की भावना, सिंह युग के कवियों की काव्यागत विशेषता हैं। उदाहरणार्थ-

फ्रान्स की भूमि जो खून से लाल च,

उख लिख्यों खून से नाम गढ़वाल च,

रैंद चिन्ता बड़ी तै बड़ा नाम की,

काम को फिक्र रैंद न ईनाम की।

भाषिक प्रयोग में नवीनता-हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी इस कालखण्ड के कवियों ने बेहिचक किया है। उनमें गढ़वाली शब्दों के प्रयोग की अपनी बानगी तो है ही जैसे- चोली, छैला, डूडो, फाला, धौली, बसगाल, फ्योंली, जिकुड़ी, गैल्या, दुवारो, ज्यू का कालू आदि। शब्दराशि का बाहुल्य गढ़वाली कविता की अपनी अभिव्यक्ति को अपना सा बनाने में सहायक हुई है। अपने शब्दों (ब्वे की बोली) की अपनी मिठास अलग ही होती है।

प्रकृति चित्रण- गढ़वाली कविता एवं उसका काव्य साहित्य प्रकृति चित्रण के बिना अधूरा जान पड़ता है। प्रकृति चित्रण ही गढ़वाली काव्य साहित्य की एक विशिष्ट पहचान है। हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण, छायावादी प्रभाव की देन माना जात है। भले ही उससे पहले भी प्रकृति चित्रण को कविता के प्रमुख अंग के रुप में स्वीकारा जा चुका था। एक गढ़वाली कविता में श्रृंगार से भरे नारी के सौन्दर्य को दर्शाता काव्य को निम्न देखिए-

''अक्षत उंदकार चुलखियों मा,

रतव्योणी मा प्रेम की भारि भूखी,

जख रोज ही स्वप्न शरीर धारी,

क्वारी तरुणि स्याणी परी दिखेंदन।

काव्यालंकार- रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग रुपाकृति वर्णन में अतिशयोक्ति की अतिरंजना, वीर भड़ों के शारीरिक सौष्ठव एवं पराक्रम वर्णन में, सुन्दरियों के देहाकर्षण में सर्वत्र दृश्यमान है। उदाहरणार्थ- महाकवि कन्हैयालाल डंडरियाल के अॅज्वाल कविता संग्रह की उल्यरु जिकुडी कविता में आये अलंकारों के विविध बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रस्तुत है-

स्यूंद सी सैण मा की कूल, स्वाति की बूंद सी ढ्वलीने

झुमकि सी तुड़तुड़ी मंगरि, मखमलि हरि सी अंगडि

फील्वर्यू हलकदी धौपंली, घुंगटी सी लौकदि कुयेड़ी

उपर्युक्त पद्य में समतल खेतों की गूल को मांग के सदृश, आंसू को स्वाति के बूंद, पानी को पतली धारा को झुमकों, हरे मैदानों को अंगड़ी, और उड़ते कोहरे की चादर को घूघंट के समान बताकर कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है। भूम्याल महाकाव्य में कविवर नागेन्द्र बहुगुणा 'अबोध बन्धु' की उपमाएं उनके अलंकृत कवि होने के प्रमाण है।

डांडा को क्वी तरुण हाथी सी लग्यूं मस्त बाटा

हर तर्प बटि सुन्दरता हृदय मा, बौला को पाणि सी कगार कटणि

हिरणी की बच्ची सी कुंगलि चिफली भरी नि सकणि हो चौकड़ी ज्वा

म्वारी सी माधुर्य भरीं च गूंगी चखुली सी ज्वा टुपरि उड़ नि सकदी

इन पंक्तियों में रास्ते में चलते तरुण हाथी के समान जीतू के मन में, भरणा की सुन्दरता ऐसे समा रही है जैसे गूल के किनारों की मिट्टी काटती बारीक पानी की धारा, जीतू की गोद में समर्पित भरणा हिरणी की कोमल बच्ची, मधुभरी मधुमक्खी, या आकर्षक चिड़िया के समान दिखाई दे रही है। उक्त पद्य में मालोपमा अलंकार है। उमाल के कवि प्रेमलाल भट्ट ने भी कुछ ऐसी ही उपमाओं को काव्य में अपनाया है।

मिथे उर्ख्यला की धाण सी, क्वी धौलि गै क्वी कूटि गै

निनि बोतल को नशा सी मैं, कखि कोणा लमड्यूं रैगयूं

कखि प्रीत क्वी मिलि छई, नौनो का बांठा कि भत्ति सी,

फुंड फेकि द्यो ये समाज न, मि फुकीं चिलम को तमाखु सी

इन पंक्तियों में कवि ने सामाजिक ज्यादतियों को ओखली में कूटे जाने के समान, खाली बोतल या जले हुए तम्बाकू की चुटकी के समान निरर्थक तथा प्रीत को बच्चे के हिस्से की खीर के समान नई उपमाएं दी है।

1. नए प्रतीकों के प्रयोग- आधुनिक समय के सुप्रसिद्ध गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी ने अपने गीतों में प्रतीकों को चुना है। उन्होंने जिन प्रतीकों को चुना वें लोक जीवन अथवा लोकभाषा में प्रचलित है। जैसे- उकाल-उंदार गीत में उकाल जीवन संघर्ष और उंदार आसान या पतनोत्मुख जीवन के प्रतीक है। 'हौंसिया उमर'गीत में बसगल्या न्यार, पोडमा को पाणी, धार मा को बथौं, झ्यूतू तेरी जमादरी में झ्यूतू शक्ति या राजसत्ता का प्रतीक, अंगूठा घिसै- अनपढ़ तथा लटुली फूली गैनि गीत में पके हुए बाल समय गुजर जाने के प्रतीक है। कवि के गीत संग्रह गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत है जिनमें गढ़वाली प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई देती है-

खैरि का अंधेरों मा खुज्ययुं बाटु

सुख का उज्याला मा बिरड़ि गयूं

आंखा बूजिकि खुलदिन गेड़

आंखा खोलिकि अलझि गयूं

उमर भप्ये की बादल बणिगें

उड़दा बादल हेर्दि रयूं।

ज्वानि मा जर सी हैंसी खते छै

उमर भर आंसू टिप्दि रयूं

रुप का फेंण मा सिंवाल नि देखी

खस्स रौड़ू अर रडद्वदि गयूं

इन पंक्तियों में अंधेरा- परेशानी का, उजाला सुख का, गेड-मानसिक गुत्थी का, उलझना- परेशानी में पड़ना, बादल- बुढ़ापा का, हंसी- खुशी का, आंसू-दुख का, फेण- रुप की चमक तथा सिंवालु- (कायी) आकर्षण मन्द पड़ने का प्रतीक है। प्रतीक की दृष्टि से कवि गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' एवं अबोध बन्धु बहुगुणा प्रमुख कवि है। अन्य कवियों में गोविन्द चातक व श्रीधर जमलोकी उल्लेखनीय है। कवि कंकाल के गीत संग्रह नवाण की तुम द्यबता और अमर स्वर आदि कविताएं प्रतीकात्मक है। इस काव्य में बांसुरी जीवन की आती-जाती सांसां का प्रतीक है। भोर का तारा रतव्योण्यां जन्म का, फूलो का रस, रंग व गन्ध जीवन के विभिन्न सुख-उल्लासों की प्रतीक, जेठ की दुपहरी, जवानी अथवा जीवन की क्रियाशीलता का प्रतीक एवं खलिहान में बैलों के फेरे जन्म-मृत्यु के प्रतीक के रुप में प्रयुक्त मिलते है। उदाहरण प्रस्तुत है-

बजणी छ बांसुळी, धार मा देखा रतव्योण्यां ऐगे

भांति-भांति का रस, रंग लैगे, फूलों मा गन्ध रसधार फलू मा भरणी छ बांसुळी।।

जीवन मिट जालो स्वर यख राला, दायीं जसि फेरा रीटि की आला

बसग्याळि गंगा बणि की आख्यूं मा- तरणी छ बांसुळी

गिरधारी प्रसाद कंकाल ने घिडंवा (नर गौरेया) तथा घिडुड़ी (मादा गौरेया) को नर-नारी के प्रतीक के रुप में चुनकर गरीब पर्वतीय दम्पत्ति की कथा-व्यथा को मनोरंजक ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है। कवि चक्रधर बहुगुणा ने भी प्रतीकों में अपनी बात कही है। नौबत संग्रह की दीवा कविता में दिया-चेतना का, अन्धकार चेतना का, ज्योति ज्ञान का, तेल विवेक का, घानी संघर्ष का, और बाती त्याग का प्रतीक है। सदानन्द जखमोला के रैबार काव्य में बिम्बों की भरमार है। जैसे-

भींचूळों सी तिगुड़ी ढसको, प्यार पींदी धमेल, भैलो खिल्दा नितम्बों मा, चुंटि फूंदा भग्यान

मर्छाणी को अतुल गति से छांछ छुळ्दों किलोल, पुन्यो से ही दरश परश् पर्व काल सुकाळों।

मंगतू काव्य में कवि डंडरियाल ने मंगतू की गरीब पारिवारिक स्थिति के अनेक बिम्ब उतारे है।

2. छन्द विधान- गढ़वाली कवियों ने परम्परागत और शास्त्रीय छन्दों में रचना की है। मंगतू में बीस मात्रा के छन्द को अपनाया गया है।- किलै मेरि ईजत गिरीं इतग रैन्दी,

म्यरा बाब जी जो हमुम छैन्दि हून्दी।।

म्यरा बाब जी तुम यखा आइ जावा।

प्वड्यूं गौरु का ल्याख मी देखि जावा।।

फ्यूंली की कविताओं में नये छन्दों का वैविध्य विद्यमान है- फुर-घिंडुडी आजा, पदानु का छाजा, चाड नी जो छवी लगउं, केकु तेरा नेडु अउं, इन्नि समझि तन्नि छउं, कुछ नी तेरु काजा, पदानु का छाजा।

उमाशंकर 'सतीश'के गीतों का संग्रह खुदेड़ सन् 1956 गीतात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें एक कविता छन्द मुक्त शैली में है- हे रां/दैव/कनी होली भग्यानी/मैतासु, मेरी जिकुड़ी का/टूक होंदा/नी ओदूं सरील, जगा पर/मेरी भुली/दीदी, जिया/डांडा का काफल, कन होला/ खायेणा/मेरि ब्वे होंदी/मैं मैतु बुलौंदि/ हे रां! दैव।

निष्कर्षतः गढ़वाली कवियों में पारम्परिक छंदों के साथ ही मनमोहक मौलिक छन्दों का भी निर्माण किया। उनकी दृष्टि मुक्त छन्द वाली कविता की ओर भी आकृष्ट हुई है। गढ़वाली लोकगीतों में समय-समय पररचे जाने वाले देश, काल और परिस्थिति की प्रेरणा से उद्भूत घटना मूलक और इतिवृत्तात्मक गीतों की संख्या बहुत है। सत्य यह है कि लोक मानस अपने आस-पास की घटनाओं के प्रति अधिक आकर्षित होता है। फलतः जो भी वैसी घटना घटी, झट से उस पर गीत बन जाया करते है। कुछ घटनायें ऐसी होती है जिनमें इतिहास का निर्माण होता है किन्तु कभी बहुत सामान्य घटनाएं भी गीतों में बंध जाती है। लोक की दृष्टि में उनकर भी उतना ही महत्त्व होता है।

प्राचीन काल के घटनामूलक गीत अब शेष नहीं रह पाए है। कुछ मुग़ल और गोरखा आक्रमण के गीत बचे है। आजादी के लिए जो जन आन्दोलन हुए है उनकी अभिव्यक्ति गीतों मे कई बार हुई है। गांधी, नेहरु, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, सुमन आदि के गीत एक समय बहुत लोकप्रिय रहे हैं। पंचायती राज आ जाने के बाद लोक में जो राष्ट्रीय चेतना की लहर आई वह भी अनेक गीतों में बोलती है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के ऐतिहासिक दौर के गीतों में गांधी, नेहरु, सुभाष की प्रशंसा तथा स्वतन्त्रता के बाद की बदलती स्थितियों, जमाने के बदलते रंगों, गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई, अकाल जैसी दैवी आपदाओं, स्त्रियों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं, अधिकारियों के हथकंडों आदि कई घटनाओं पर गढ़वाल में समय-समय पर लोक साहित्य की रचना होती रही है। इस कालखण्ड में बालगीत भी खूब रचे गए। बालगीत अब मिटते जा रहे है। पुरानी वीरगाथाएं (पवाड़े) लुप्तप्राय हो रहे है। वर्तमान समस्याओं का चित्रण करने पाले गढ़वाली के नए लेखक पौराणिक एवं ऐतिहासिक साहित्य के लेखन में रुचि नहीं ले रहे हैं। इसका कारण उनका अपनी जड़ों से हट जाना ही माना जा सकता है। इसका प्रभाव गढ़वाली भाषा पर भी पड़ा है। उसके मूल शब्द खोते जा रहे हैं। गढ़वाली लोक साहित्य की परम्परा में भी भारी बदलाव आने लगा है। वैज्ञानिक प्रगति तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और रहन-सहन ने पुराने मिथकों को ध्वस्त

कर दिया है। अतः आधुनिक पाठक और रचनाकार/लेखक प्राचीन परम्पराओं (मिथों) पर अविश्वास जतलाने लगे है। वें कल्पना की अपेक्षा यथार्थ को महत्त्व दे रहे है। यही कारण है गढ़वाली का कल्पना से अतिरंजित लोक साहित्य धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है।

### 14.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रुप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते है। इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध है। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार है - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौंळि (डा. गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौंळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण, निबन्ध तथा यात्रा वृतान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वीं (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के लेखक है। रमा प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी'द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी'उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख है। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहे है। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही हैं । उपन्यास अपेक्षाकृत कम लिखे गए हैं । नाटक लिखे जा रहे हैं लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही हैं जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती हैं। खण्डकाव्य भी कम रचे जा रहे है। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नहीं गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नहीं पनप पा रही हैं। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक प्रहलाद की आज भी चर्चा होती है। लेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नहीं लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गए नाटक अभी तक अप्रकाशित है। वर्तमान गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नहीं दे रहे है या उनकी रुचि इन विधाओं में नहीं है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नहीं बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

### 14.3.3 वर्तमान लोक साहित्य की विधाएं

वर्तमान समय में गढ़वाली लोक साहित्य में कविता, कहानी, निबन्ध, आलोचना, रेडियो रुपक, नाटक/एकांकी, हास्य-व्यंग्य, उपन्यास और रिपोर्ताज विधाएं विकसित हो रही है। नए लेखकों और कवियों ने अपना शिल्प और काव्य वर्तमान हिन्दी साहित्य के अनुकरण पर बिल्कुल ताजा और तीखे स्वाद वाला अर्थात अभिधात्मक किन्तु व्यंग्य से भरपूर (बिहारी के दोहों की तरह) लघु आकार प्रकार किन्तु तीखी मार वाला शिल्प, और वर्णन कौशल को अंगीकार कर लिया है। पुरानी परम्परा का नीतिपरक साहित्य अब बीते युग की बात हो चुका है। वर्तमान काव्य विद्या के अन्तर्गत पद्यात्मक अभिव्यक्ति की ओर नए लेखकों का अधिक रुझान है।

## 14.4 सारांश

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रुप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते है। इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध है। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार है - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौंळि (डा. गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौंळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण, निबन्ध तथा यात्रा वृतान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वीं (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के लेखक है। राम प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी' उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख है। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहे है। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही है। उपन्यास एक आध दिखने में आते है। नाटक लिखे जा रहे है लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही है जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती है। खण्डकाव्य कम देखने में आ रहे है। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नहीं गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नहीं पनप पा रही है। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक 'प्रहलाद' की आज भी चर्चा होती है। लेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नहीं लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गए नाटक अभी तक अप्रकाशित है। वर्तमान

गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नहीं दे रहे है या उनकी रुचि इन विधाओं में नहीं है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नहीं बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

## 14.5 शब्दावली

| | | |
|---|---|---|
| मोछंग | - | छोटा वाद्य यन्त्र |
| माल | - | बहादुर/मल्ल |
| भोट | - | तिब्बत |
| नागरजा | - | कृष्ण |
| ढ़साक | - | हल्का स्पर्श |
| ज्यूंदाल | - | मन्त्र द्वारा फेंके गए चावल |
| जागरी | - | जागर गीतों के विशेषज्ञ (गायक/वादक) |
| अंज्वाल | - | अंजुलि |
| खर्क | - | भैसों के रहने का स्थान |
| खुंदेड़ | - | एक प्रकार के गीत |
| कळकळी | - | उत्कंठा से उत्पन्न गले पर एक प्रकार की अद्भुत अनुभूति |
| औजी | - | ढोल, दमामा बजाने वाले हरिजन |
| गदरा | - | छोटी नदी |
| रुणक-झुणक | - | चुपके-चुपके मन्द ध्वनि करते हुए |
| मुन्यासों | - | पगड़ी |
| कुखड़ी | - | मुर्गी |
| दगड्या | - | दोस्त |

बोकट्या - बकरा

## 14.6 अभ्यास प्रश्न एवं उत्तर

1. निम्न प्रबन्ध किसके द्वारा लिखे गए है ?

क गढ़वाल के साहित्य संस्कृति पर स्कन्द पुराण का प्रभाव

ख नागरजा महाकाव्य

ग नाथपंथ और गढ़वाल

घ जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन

2. आधुनिक गढ़वाली कथा के किन्ही तीन लेखकों के नाम लिखिए?

3. गढ़वाली नाटक विधा पर सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किस विद्वान ने किया है ?

4. प्रथम चरण के गढ़वाली काव्यों के नाम लिखिए।

5. निम्नलिखित आधुनिक कविता संग्रहों के लेखकों के नाम बताइये।?

क गाण्यू की गंगा, स्याण्यू का समोदर,

ख मेरी अग्याल

ग हैंसदा फूल खिलदा पात

घ कुयेड़ी

6. निम्न रचनाएं किस कवि की है ?

अंज्वाल, चांठो का घ्वीड़, मंगतू,

7. गढ़वाली प्रबन्धकाव्य पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिए।

8. आधुनिक समालोचना 'बीं' के लेखक का नाम बताओ।

9. नरेन्द्र सिंह नेगी के बसन्त पर लिखे हुए गढ़वाली गीत के बोल लिखों।

**उत्तर**

उत्तर 1

क चन्द्रशेखर बडोला

ख कन्हैयालाल डंडरियाल

ग डा. विष्णुदत्त कुकरेती

घ डा. उमाशंकर 'सतीश'

उत्तर 2

1. नरेन्द्र कठैत
2. हिमवन्तवासी
3. अबोध बन्धु बहुगुणा

उत्तर 3 डा. गोविन्द चातक

उत्तर 4 प्रथम चरण के गढ़वाली काव्य निम्नलिखित है-

1. बाटा गोडाई
2. जय-विजय
3. पंछी पंचक
4. फुलकण्डी
5. मोछंग
6. प्रहलाद नाटक

उत्तर 5

क नरेन्द्र सिंह नेगी

ख ऋषिवल्लभ कण्डवाल

ग ललित केशवान

घ कन्हैयालाल डंडरियाल

उत्तर 6

अंज्वाल, चांठो का घ्वीड़, मंगतू, उक्त तीनों रचनाएं कन्हैयालाल डंडरियाल जी की है।

उत्तर 7 गढ़वाली प्रबन्ध काव्य

प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत खण्डकाव्य और महाकाव्य दोनों विधाएं आ जाती है। गढ़वाली में अभी तक दो ही महाकाव्य प्राप्त हुए है। पहला महाकाव्य अबोध बन्धु रचित भूम्याल और दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल रचित नागरजा है। गढ़वाली में अनेक गीत एवं संवादात्मक खण्डकाव्य भी रचे गय है। जिनमें जय-विजय, प्रहलाद नाटक दोनों भवानीदत्त थपलियाल रचित गीतात्मक प्रबन्ध नाट्य काव्य है। इनकी शैली नाटकीय होने से लोग इन्हें नाटक ही मानते है। बाटा गोडाई बलइेव प्रसाद दीन का गीत संवादात्मक खण्डकाव्य है। जिसे रामी नाम से जाना जाता है। भजन सिंह 'सिंह'की वीर देवकी तथा तारादत्त गैरोला कृत सदेई दोनों खण्डकाव्य है। कन्हैया लाल डंडरियाल का मंगतू तथा सदानन्द जखमोला का रैबार और अश्रुमाला कृतियां खण्डकाव्य के अन्तर्गत है।

उत्तर 8 आधुनिक समालोचना 'बीं' के लेखक श्री वीरेन्द्र पंवार है।

उत्तर 9 नरेन्द्र सिंह नेगी का बसन्त पर आधारित गढ़वाली गीत निम्नलिखित है-

रुणुक-झुणुक ऋतु बसन्ति गीत लगांदि ऐगे,

बसंत ऐगे हमार डांडा सार्यू मा

ठुमुक-ठुमुक गुंदक्यली खुट्यून हिटी की ऐगे,

बसन्त ऐगे लिपीं पोतीं डिंडल्यूं मा।

मुखड्यूं मा हैसणू च पिंगलू मौल्यार,

गल्वड्यूं मा सुलगै गे ललंगा अंगार

आंख्यूं मा चूमाण सुपिन्या बसन्ती

उल्रया जिकुड्यूं मा छलकेणू प्यार

सिंणका सूत कुंगलि कंदुड़ि- नकुड्यूं मा पैरेगे

बसन्त ऐगे हमार गांदी चौठ्यू मा।

## 14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराखण्ड की लोक कथाएं, गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, अन्सारी रोड़, नई दिल्ली- प्रथम संस्करण 2003

2. गढ़वाली लोककथाएं, डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली

3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, डा. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

4. उत्तराखण्ड की लोककथाएं, डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली।

5. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना, मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

6. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य, डा. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।

7. गढ़वाली लोक गीत विविधा, डा. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

## 14.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के वर्तमान स्वरूप पर विस्तृत निबन्ध लिखिए .